Year 5, Issue 17
January-March 2008

VASUDHA EDITOR-PUBLISHER : SNEH THAKORE

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ५ - अंक १७, जनवरी-मार्च २००८

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
ग़ज़ल	प्राण शर्मा	३
ल कियाँ	मृणाल पाण्डे	४
बस अब और नहीं	ममता रहेजा	७
दीपशिखा	सुधा गोयल	८
हालत मेरी	पदमचन्द्र सिंघी	११
हिंदी संस्कृति बनाम सामासिक संस्कृति	डॉ. विजयराघव रेड्डी	१२
पलकों पे सजा लेंगे सुहाना सपना	एलिज़ाबेथ कुरियन 'मोना'	१७
पीढ़ियों की दूरी	डॉ. इन्द्रा भटनागर	१८
रिश्ते	डॉ. रेखा 'रोशनी'	२१
फ़साद की ज	मधुप शर्मा	२२
दे भगवन् तू इतना बल	अनिल मेहता	२५
नैतिक मूल्य	महेश राजा	२६
ग़ज़ल	शैलजा नरहरि	२६
दफ़्तर में कबूतर	डॉ. परेश	२७
प्रतिरोध	डॉ. मीना पंडया	२९
युग प्रवर्त्तक आचार्य स्वामी रामानंद	डॉ. वीरेन्द्र कुमार वसु	३०
इरादा वही जो अटल बन गया है	रामप्रसाद शर्मा 'महर्षि'	३३
दहेज	सुरेश शर्मा	३४
पत्थर	मरियम 'ग़ज़ाला'	३४
अपनी अपनी सोच	डॉ. योगेन्द्रनाथ शुक्ल	३५
ग़ज़ल	महेन्द्र नाथ नरहरि	३५
आसरा	प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र	३६
दुखों में भी खुशियाँ मनाता रहा हूँ	आचार्य हरिसिंह त्यागी	३८
चौबीस पहियों वाला मंदिर	डॉ. चतुर्भुज	३९
मगध के कर्मठ बौद्ध भिक्षु : जगदीश कश्यप	अशोक प्रियदर्शी	४१
उद्देश्य	राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन'	४३
सतरंगिया भोर	विजय सिंह नाहटा	४४

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail................................$35.00

Web site : http://ca.geocities.com/sneh.thakore/Home.html

E-mail: sneh.thakore@yahoo.ca

संपादकीय (अंक १८, अप्रैल-जून २००८)

कैनेडा के ऑन्टेरियो प्रांत की प्राकृतिक विशेषता यह है कि यहाँ के चारों मौसम अपने में एक विशिष्ट अनुपम रूप सँजोये हुये होते हैं। चारों के चारों मौसम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और पतझ , हर मौसम अपनी दिस्टिन्क्ट फ्लेवर लिये आते हैं, सुस्पष्ट लक्षणों से विभूषित होते हैं। सर्दी प ेगी तो ऐसी क क प ेगी कि आपकी हड्डियाँ जमा देगी। कोमल वसंत कब चुपके से आकर ऐसी क ाके की सर्दी को मात दे जायेगा कि अपनी ऐंठ में पसरी हुई बरफ़ यह जान भी नहीं पाती कि कब चुपके से धरती पर पसरे हुये उसके साम्राज्य में हरी-हरी घास ने सेंध लगा ली है। वह अचानक अचम्भित हो हरी दूब की इस गुस्ताख़ी पर कसमसा उठती है। गर्व से गर्वित उसकी चँदीली चमचमाहट पर पानी फिर जाता है। ग्रीष्म नव-पल्लव से अठखेलियाँ करता हुआ, कभी माँ की तरह आँचल में समेट व कभी बाप की तरह उनकी रक्षा करता हुआ देखते ही देखते उन्हें यौवन की चौखट पर ला कर ख ा देता है। और तब प्रकृति विभिन्न रंग-बिरंगे परिधानों से लिपटी नवयौवना-सी इठलाती चाल से सबको सम्मोहित कर लेती है। और फिर पतझ । आह ! पतझ , पर एक शाश्वत् सत्य। चिरन्तर कुछ भी नहीं है। आवागमन, आवागमन।

यदि पतझ शाश्वत् सत्य है तो नव-जीवन भी तो एक शाश्वत् सत्य है। यहाँ के वसंत की अपनी ही एक निराली छटा है। आप लेखनी से कवि हों या ना हों, यह मौसम आपको अपने नैसर्गिक सौन्दर्य से अभिभूत कर संवेदनशील कवि-हृदय अवश्य बना देता है। आपके मन-मयूर को प्राकृतिक छटा के लय-ताल पर सुर से सुर मिला मग्न हो नाचने पर विवश कर देता है। वैरागिनी धरती की छाती से अचानक सिर उठाती हुई ट्यूलिप की छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं कोमल कोंपलें, एक बार लगाने पर साल-दर-साल स्वयं ही प्रस्फुटित हो आपको यह एहसास करा जाती हैं कि पाषाण-हृदय चीरा जा सकता है। ये जीवंत उदाहरण हैं कि यदि आप गहरे खोदेंगे, गहराई में जायेंगे, प्रतिदिन प्रयास करेंगे तो आप अवश्यमेव ही, निःसंदेह अपनी पूर्ण सम्भाव्य कार्यक्षमता प्राप्त कर लेंगे। "जिन खोजा तिन पाइयाँ" की कहावत को सार्थक करते हैं। सूखे ठूँठ से ख े पात विहीन वृक्ष पर दो-चार दिनों के अन्तराल में ही एक अनोखी हरीतिमा लिये पल्लवित किसलय यह संदेश देते हैं कि जीवन चाहे कितना ही नीरस या कठोर क्यों न हो, आप चाहें तो नन्हे-नन्हें प्रेम-पल्लव से आप उसे सरस, मधुमय, सुरभिपूर्ण बना सकते हैं। आत्मा की यह आनंदानुभूति न केवल आपको बाह्य वातावरण को साफ करने की प्रेरणा देती है वरन् अंतःकरण को भी अभिसिंचित कर उसमें नव-प्राण फूँकने को भी प्रेरित करती है। शिशिर की मार से बचने हेतु हमें छो कर गये पंछी पुनः नये घोंसले बनाने की आस लिये वापिस आ अपनी चहचहाहट से हमारे जीवन को अपने संगीत की मधुर लहरियों से भर यह बताने से नहीं चूकते कि कष्ट के बाद सुख के दिन आएँगे ही आएँगे।

वसंत के नव आगमन पर आइये हम सब भी अपनी कार्यक्षमता को पहचानें। अपने उन प्रयासों को दृढ़-प्रतिज्ञ हो गति दें, उनके प्रति पूर्णरूपेण कमरबद्ध हो जायें जो हमें हमारी अभिलाषाओं, हमें हमारे जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसित कर सकें। वसंत को उस मील के पत्थर के रूप में बना लें जिसके इर्द-गिर्द हम अपने जीवन की बगिया को पल्लवित, पुष्पित, सुरभित कर सकें। न केवल स्वयं अपने जीवन का आनंद उठा सकें, अपने आस-पास को भी महका सकें, दूसरों का जीवन भी सुखमय बना सकें। जिस तरह प्रकृति मुक्त हस्त बिना भेदभाव किये सबको अपनी छवि से आनन्दित करती है, मानव भी मानवता के पथ पर बढ़, मानव कल्याण कर, मानव जीवन को सार्थक करें।

प्रकृति के चराचर को मंगल-कामनाओं में समेटे,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

ग़ज़ल

प्राण शर्मा

होते ही प्रातःकाल आ जाती हैं तितलियाँ
मधुवन में खूब धूम मचाती है तितलियाँ

फूलों से खेलती हैं कभी पत्तियों के संग
कैसा अनोखा खेल दिखाती हैं तितलियाँ

सुन्दरता की ये देवियाँ परियों से कम नहीं
मधुवन में स्वर्गलोक रचाती हैं तितलियाँ

उ ती हैं किस कमाल से फूलों के पास-पास
दीवाना हर किसी को बनाती हैं तितलियाँ

वैसा कहाँ है जादू परिंदों का राम जी
हर ओर जैसा जादू जगाती हैं तितलियाँ

इनके ही दम से 'प्राण' हैं फूलों की रौनकें
फूलों को चार-चाँद लगाती हैं तितलियाँ

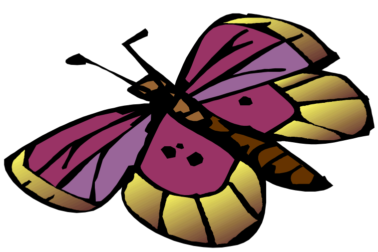
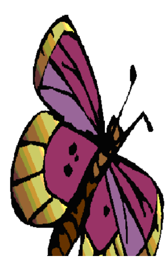

ल कियाँ

मृणाल पाण्डे

जिस दिन हम लोग माँ के साथ नानी के घर रवाना हुए, बाबू ने एक सुराही फो ी थी पता नहीं जान-बूझकर या अनजाने में। पचाक। तमाम पानी-ही-पानी कमरे में फैल गया था। माँ ने धोती ऊपर कर पैर रखते हुए, दूसरे कमरे से कान लगाये सुन रही सरू की माँ से कहा था कि ज़रा पोंछा ले आये, तमाम पानी-ही-पानी हो गया है और उनके पीछे पैर-वैर रपट कर किसी की हड्डी-पसली चटक गयी तो एक और मुसीबत।

माँ को वैसे भी हर चीज़ के अंत में मुसीबत नज़र आती थी। हम लोग घर में होते तो मुसीबत, स्कूल में होते तो मुसीबत, बीमार होते तो मुसीबत, भले-चंगे उछलते-कूदते होते तो मुसीबत - पोंछा लगाती सरू की माँ ने सिर तनिक टेढ़ा करके माँ से पूछा था कि इस फेरे तो तीनेक महीने रहोगी-ही-रहोगी, न ! माँ ने, जैसा कि इन दिनों उसकी आदत हो गयी थी, जाँघों पर हाथ रख कर वज़न तौला और काँख कर बैठते हुए कहा कि हाँ, उससे पहले वे लोग आने देंगे थो` ही ना, 'जा बाहर खेल' यह अंतिम आदेश मेरे लिए था, जो हमेशा की तरह हर गलत मौके पर हैरतअंगेज ढंग से किसी कोने में हाज़िर पायी जाती थी।

कमरे से टूटी सुराही का एक टुक ा चूसने के लिए सफाई से उ ा कर ले जाते मैंने सुना कि माँ, सरू की माँ, या जाले लगी छत से कह रही थी कि इस बार ल का हो जाता तो उन्हें छुट्टी होती, बार-बार की मुसीबत . . . सरू की माँ ने हमेशा की तरह सिर हिला-हिला कर ज़रूर कहा होगा, 'क्यों नहीं, क्यों नहीं।'

ट्रेन में मैंने ल -झग कर खि की के पास वाली सीट हथिया ली थी और फिर दूसरों को जीभ बिराई - ई ऽ ऽ, माँ की नज़र अपनी ओर घूमती पा कर मैंने हिल-हिल कर जपा, 'इ से इमली, ई से ईख !' पर माँ का ध्यान इस वक्त मुझ पर नहीं टिका। उस पर इस वक्त कई मुसीबतें थीं - बिखरा जाता सामान, डगमगाती सुराही, थकान, हम तीनों। एक स्टेशन पर खूब मिर्ची के समोसे खरीदे तभी एक औरत ने बगल की खि की से अपने बच्चे को सू-सू करायी। मारे घिन के मुझसे समोसा नहीं खाया गया, मैंने माँ को दिया। उबले आलू का एक टुक ा सीट पर प ा था। उसे मसल कर जू-जू की ा बनाकर कुछ देर छोटी बहन को डराया। वह चीखी। माँ ने चिकोटी काटी, मैं रोयी। ब ी बहन ने तब उकता कर कहा, 'क्या मुसीबत है !' ब ी बहन ज्यादा प्यार करती है। सिर्फ़ वही। बाकी सब गंदे हैं।

स्टेशन पर मामा लेने आये। मैं मामी की बगल में बैठी। मामी पान चबाती थीं तो उनके कान की लवों पर माणिक के बुंदे ऊपर-नीचे होते थे। ड्राइवर जितनी बार जीप का हार्न बजाता, हम तीनों बहनें मिल कर चीखतीं - पों ऽ ऽ ऽ। ड्राइवर, हँसा। घर पहुँच कर उसने मुझे और छोटी बहन को गोदी में लेकर जीप से उतारा। उससे चाय और बी ी की महक आती थी, उसकी मूँछे, ब ी-ब ी थीं और उसकी वर्दी का गरम कप ा चुभता था। नींद आती थी। उतारने में सुराही फिर लुढ़क गयी, पानी फैल गया, मुझे बाबू की याद आयी। और मैंने छोटी बहन की चप्पल को ऐसे दबाया कि वह गिरते-गिरते बची। 'मुसीबत की ज !' माँ ने दाँत भींच कर ऐसे कहा कि कोई और न सुने और मुझे हाथ से पक कर औरों को ऐसा दिखाया, जैसे मुझे सँभाला हो, पर सचमुच इतनी जोर से भींचा कि कंधा दुख गया। मुझे बाबू की याद आयी। नानी के घर आने में हमेशा यही होता है। बाबू तो साथ आते नहीं, और यहाँ आते ही माँ भी मौसियों, मामियों, नानी और पुरानी नौकरानियों के बीच एकदम ही गुडुप। दिन में उसके पास भी जाना चाहें तो कोई-न-कोई टोक देता है, 'यहाँ तो बेचारी को आराम करने दो।' माँ भी कैसा बेचारीवाला चेहरा बना लेती है, जैसे वहाँ हम लोग उसे काट खाते हों। धत् ! नानी के घर में घुसने से चिढ़ होने लगी, मैं झा ियों के पास जान-बूझ कर ठिठकी। झबरा कुत्ता आया, उसने मुझे सूँघा, तभी भीतर से किसी ने मेरा नाम लेकर कहा, वह फिर कहाँ रह गयी ! मैं और कुत्ता साथ-साथ घर में घुसे।

नानी, मामा के ल के को गोद में लिये बैठी थीं। उन्होंने कुत्ते को दुत्कारा। वे जानवरों की छूत मानती थीं। कुत्ता पूँछ नीची कर निकल गया। उसे दुत्कारे जाने की आदत थी। मुझसे कहा गया कि पैर छुओ, ऐसे नहीं ऐ ऽ से ऽ। अरे, ल की का जनम है और ज़िन्दगी भर झुकना है तो सी ऽ ख

ही लो। नानी ने मेरी पीठ पर हाथ फेर कर कहा कि उहुँक, ये नहीं बढ़ी लम्बाई में तनिक भी। आठ की कौन कहेगा इसे?

मैंने मामा के ल के को चिकोटी भर ली। वह बेवकूफ-सा तब भी मेरे पीछे घूमता रहा। गोरा-गोरा प्यारा-सा। वह उम्र के लिहाज़ में लम्बा जा रहा था। पाँच का था, सात का लगता। 'कहानी सुनायेगी रात को?' उसने मुझसे पूछा। 'नहीं', मैंने कहा और झूठ-मूठ अखबार पढ़ने लगी।

'क्या मुसीबत है !' माँ कह रही थी और प ोसन नानी कह रही थी कि 'लली की माँ, इस बार तो लली के ल का ही होगा, चेहरा देखो, कैसा पीला प गया है लली का, ल कियों के बेर कैसी सुरख गुलाब लगती थी' 'क्या ऽ पता, इस बार भी।' माँ ने कहा, और बेचारीवाला चेहरा बना कर नाखून खोंटने लगीं। 'वहाँ रोटी-पानी को कोई है तेरे कर्त्ता के !' प ोसन नानी पूछ रही थी। मुझे बाबू की बहुत याद आयी। बाबू से कितनी साफ खुशबू आती थी ना ! उनकी गोद गुलगुली थी। माँ इधर ज्यादा देर गोद में नहीं लेटने देती, कहती है - 'उफ् हाँटे-माँटे (??) एक कर डाले, सा ी मुसल दी सो अलग, अब उठ भी, ढेरों काम प ा है मेरा। ऊपर से ये मुसीबत औ ऽ र। उठ।' नानी ऊपर को हाथ जो कर कहती है, 'हे देवी, मेरी लाज रखना, इस बार ये मायके से बेटा लेकर जाये।' फिर वे आँखें पोंछती हैं।

मैंने कनखियों से बहनों को देखा, वे सो गयी थीं। जहाँ हम सोये थे, वहाँ काठ की दीवार से ब` से कमरे के बीच में दो हिस्से किये गये थे। जहाँ मेरा तखत था, उसके ठीक ऊपर, एक ब ी दीवाल घ ी टिक-टिक करती थी, घंटे बजाने से पहले उसमें एक गहरी सुरसुरी आवाज़ आती थी, जैसे छोटी बहन पुक्का फा कर रोने से पहले ऊपर साँस खींचती है। सब बत्तियाँ बंद हैं, कमरे में बस चाँद का उजाला है। तुलसा दाई माँ के तलवों में तेल ठोंक रही है, और कह रही है, 'इस बार ल का होगा तो स्टेनलेस स्टील की जरीवाली सा ी लूँगी, हाँ ऽ।'

चाँदनी में माँ का चेहरा नहीं दीखता, बस ढोल जैसा पेट दीखता है। माँ की सा ी खिसक गयी है। तुलसा कोई दुखती रग छूती है तो माँ हल्के से गुँगुआती हैं। घर लौटती गायों की तरह। 'अबकी ल का हो जाता, तो छुट्टी होती।' वह फिर तुलसा से भी कहती हैं। और यह भी कहती हैं कि अब तू जा, तेरे बच्चे बैठे होंगे - तेल की कटोरी चारपाई के खूब नीचे खिसका दीजो, वरना सुबह बच्चों के पैर से ठोकर लगी तो तमाम तेल-ही-तेल....खराब बात।' माँ बात आधी छो देती है, तो देर तक कमरे में बात तैरती रहती है। घ ी की टिक-टिक की तरह। अच्छी बात हमेशा पूरी कहते हैं ब` लोग, खराब बात आधी ही - ऐसा क्यों? क्या ऽ औरत का भाग्य.... चुप्पी। अरे तीन ल कियाँ ऽ ऽ चुप्पी। बाहर एक तारा खूब तेज चमक रहा है। क्या ध्रुवतारा होगा ! बाबू कहते है, मन लगा कर पढ़ोगी तो तुम भी, जो चाहो बन सकती हो, ध्रुवतारे की तरह। ल का तो नहीं बन सकती पर? मैं ढिठाई से कहती हूँ, तो बाबू पता नहीं क्यों धमका देते हैं कि ब ों के मुँह लगती है। ब` लोगों का कुछ भी समझ में नहीं आता। ब ी बहन कहती है, ब` लोगों का कभी भरोसा नहीं करना चाहिये, आपनी बात सब खोद-खोद कर पूछ लेते हैं, खुद कुछ नहीं बताते।

कोई हमें कुछ नहीं बताता। यहाँ खासकर रात को जब हम सब सो जाते हैं तब यहाँ ब ों की दुनिया खुलती है, जैसे बंद पिटारा। मैं जागकर सुनना चाहती हूँ पर हर बार बीच में मुझे जाने क्यों नींद आ जाती है। ये आवाज़ किसकी है? खाँसी दबाते कौन रो रहा है? छोटी मौसी? 'कुत्ते जित्ती इज्जत मेरी नहीं उस घर में।' वह माँ के बगल में कहीं कह रही हैं। कहाँ? हैं? कहाँ? हैं? पूछना चाहती हूँ। माँ कह रही हैं कि जी तो उन सबका कलपता है पर उसे निभाना तो है ही। मेरी आँखें बंद होती हैं।

'निभाना क्या होता है माँ !' मैं सुबह पूछती हूँ। सब लोग नाश्ता कर रहे हैं। मैं कहती हूँ कि वो वाला निभाना जो छोटी मौसी को चाहिये। मुझे एक तमाचा प ता है, फिर दूसरा; फिर मामी बचाती हैं, छो ि ए भी बच्चा है। 'बच्चा-वच्चा नहीं, पुरखिन है', माँ का पेट गुस्से से थिरकता है, 'चोरी से ब ों की बातें सुनती है ! जाने क्या होगा इसका !'

'तू भी....' बाहर हौदी के पास बैठी ब ी बहन बीने फूलों को औंधाती कहती है, 'सौ बार कहा नहीं, कि चबर-चबर सवाल मत पूछ। पीट-पीट के मार डालेंगे तुझे वो लोग तुझे एक दिन, अगर बहुत पूछेगी तो।' मैं रोते-रोते कहती हूँ, खूब पूछूँगी, खूब पूछूँगी।' 'तो जा के मर फिर।' ब ी

बहन कहती है और समझदारी से नानी के गोपाल की माला गूँथने लगती है। ये मेरी लाखों की लक्ष्मी बेटी है, नानी उसे कहती है, मुझे सुना कर अकसर।

दोपहर में मैं छोटे बच्चों को ख़ौफनाक डायनों और भूतों की कहानियाँ सुनाती हूँ जो नीचे वाले अखरोट के पे में रहते हैं, और कहती हूँ कि चाँदनी रात में ठीक बारह बजे उठ कर वहाँ जाओ तो वे बच्चों के खून से नहाते दिखाई देंगे। नाक से बाोलते हैं वो, नाक से ! पहले-पहल तो उनकी बोली भी समझ नहीं आती। बच्चे मेरे पीछे-पीछे घर-भर में घूमते हैं। जैसे जादूगर के पीछे चूहे।

दोपहर में ब ी मामी और माँ हमें खट्टी-मीठी गोलियाँ खाने को पैसे देकर भगा देती हैं। उनका कमरा अँधेरा है, काँचों पर हरा कागज चिपका है। मामी, माँ, मौसियाँ, नानी, सारे कमरे में औरतें ही औरतें प ी हैं। हर घ ी कुछ-न-कुछ खाती हुई। उनकी मुदगर जैसी बाँहें, मोटी-मोटी टाँगें-अधनंगी टाँगें, धारीदार पेट। हमें क्यों कहा जाता है, पैर फैला कर मत बैठो टाँगें दिखती हैं; हैं?'

'तुम सब गायों जैसी लगती हो', मैं औरतों से कहती हूँ, पर शायद किसी ने सुना नहीं। फर्श पर तकिया डाले प ी छोटी मौसी एक खट्टी गोली हमसे लेकर चूसती हैं और कहती हैं, 'हद्द हैं जीजा जी भी !' अचानक कमरे में ठहाके छूट जाते हैं। कौन? क्यों? कैसे? मैं चारों तरफ उत्तर को ताकती हूँ - पर यहाँ हमारी किसी को परवाह नहीं, वो सब फिर अपनी बोली बोल रहे हैं। बाहर जाकर मैं खूब जोर से बाहर का दरवाज़ा पीटती हूँ। अब शायद माँ आकर कहेगी एक मुसीबत और - पर कोई भीतर से बाहर मेरी ख़बर लेने नहीं आता।

'हटो', सिर के इशारे से हरी की माँ कहती है, वह ट्रे में ढेरों चाय के गिलास लिये कमरे में जा रही है - 'हटो, ये तुम्हारे लिये नहीं हैं, ब ों के लिये हैं; हटो।' हरी की माँ की नाक मेंढक जैसी है, और उसकी भौंहें नाक के ऊपर जु ी हुई हैं। वह हँसती है तो मरे हुए चिमगाद की तरह उसके गाल लटक जाते हैं। 'हटो ना', वह फिर कहती है। 'नहीं हटूँगी', मैं अ जाती हूँ, 'पहले कहो, ल कियाँ अच्छी होती हैं।' 'हाँ-हाँ, कह दिया, चलो हटो', हरी की माँ कहती है। 'नहीं', मैं कहती हूँ, 'ठीक-ठीक कहो।'

'क्या हो रहा है, हरी की माँ?' अंदर से मौसी की चि चि ी आवाज़ आती है, 'चाय क्या अगले साल लाओगी?' हरी की माँ मोटी-मोटी भौंहों से मुझे बरजती है, 'ये मझली लली भीतर नहीं. . .' वह हँसती है तो उसकी मेढक जैसी नाक फुदकती है - फुद्द-फुद्द। अंदर माँ मेरा नाम लेकर कहती है कि जरूर वही कलपा रही होगी उसे। मेरा प्राण खाने को जनमी है ल की। कोई कहता है, ऐसी हालत में गुस्सा नहीं करना चाहिये।

देर तक घर के बाहर बैठी हुई हवा में उ ती गौरैयों को देखती मैं सोचती हूँ, मैं गौरैया क्यों न हुई? अच्छा, क्या माँ गौरैया भी चि यों में ल कियों को कम अच्छा मानती होगी?

'कहाँ गयी?' भीतर से किसी की आवाज़ मुझे ढूँढ रही है। मैं जान-बूझ कर दीवार की ओट हो जाती हूँ कि मुझे कोई ढूँढ न पाये। कभी। कहीं। किसी भी तरह। कहीं से वो जादू की सुपारी मिल जाती जिसे मुँह में रख कर जब चाहो अलोप हो जाओ तो मजे ही मजे।

रात को कहानी खतम कर नानी कहती है कि अब जाओ तुम सब सोने। छोटी बहन सो गयी है। उसे हरी की माँ गोद में भीतर ले जाती है। मैं नानी से पूछती हूँ, क्या मैं नानी के पास सो सकती हूँ? नानी का बदन गर्म और गुलगुला है - नानी की रजाई से इलायची-लौंग की बास आती है, नानी के तकिये के नीचे इक टॉर्च रहती है, उसे लेकर बत्ती बुझने के बाद भी बाथरूम जाओ तो अँधेरे में पैर के अँगूठे में ठोकर नहीं लगती। मामा के सोते ल के को पास खींच कर रजाई उढ़ाती नानी कहती है, 'ना भैया, एक तो ये मुझे छो कर नहीं जाता, फिर दो-दो को मैं कहाँ सुलाऊँगी। तू जा अपनी माँ के पास। भला? कल फिर कहानी सुनाऊँगी।' नानी की आवाज़ खुशामद से चुँधी-चुँधी है, जैसा सरगलाते वक्त ब े लोगों की हो जाती है। कमरे में ब ी बहन बिना मेरी तरफ करवट लिये कहती है, 'सुला लिया तुम्हें?' उसका स्वर गुस्से से काँप रहा है। घ ी बोलती है टिक-टिक। माँ की नाक बज रही है। सुलाया तुम्हें? सुलाया तुम्हें? टिक-टिक, खर्र-खर्र।

'कहाँ हो। री ल कियों?' नानी हाथ में रोली की थाली लिये पीढ़े पर से पुकार रही है। नानी के सामने एक कहा ी में हलवा प ा है. थाली में ढेरों पू याँ। अष्टमी की सुबह है। नानी के आगे चटाई प ी है। 'आओ, टीका लगवा लो।' नानी आरती में कपूर जलाती हैं, 'आओ, आरती कर दूँ तुम्हारी।' मेरी दोनों बहनें और मामा की सुंदर ल कियाँ नानी के आगे फसक ा मार कर बैठ गयी

हैं। नानी उनके टीका-अक्षत लगाती है, घंटी बजाती है। रेल के गार्ड की तरह, फिर शंख, पू ऽ ऽ प। मैं इंजन बन कर आँगन की मुंडेर पर भागती हूँ। कमरे में बास है, आरती-कपूर की बास; हलवे की, घी की बास, फूलों की बास - दे दे पैसा चल कोलकता पू-पू-पू। 'आजा बेटा, टीका करा ले, तू तो मेरी कन्याकुमारी है न !' मैं कहती हूँ, 'नहीं, मैं तो इंजन हूँ।' मामा का ल का ताली पीटता है, 'आहा जी इंजन ! आहा जी इंजन !' तभी डर मेरे पेट में मुट्ठी की तरह सख्त होता है। माँ मेरी ओर ल ख ाती-सी आ रही है। क्रोध से उसका चेहरा भिंचा हुआ है, 'मैं बनाती हूँ तुझे इंजन, अभी इसी दम।'

'पागल हो रही हो लली?' प ोसन नानी माँ का हाथ पक कर मुझे आँखों से कहना मानने को कहती है, 'बच्चा है वो - कन्याकुमारी ठैरी, आज अष्टमी हुआ। देवी का दिन, आज के दिन कन्याकुमारी पर हाथ नहीं उठाना हुआ। सराप-पाप लगता है।' मैं धम्म से मुँडेर से नीचे कूदती हूँ, माँ रो रही है। नानी ने होंठ भींच कर ल कियों को हलवा-पूरी परसना चालू कर दिया है।

'जा ना', चि चि मासी कहती है, 'क्यों अपनी माँ को रुलाती है ऐसे में?'

'जब तुम लोग ल कियों को प्यार ही नहीं करते तो झूठ-मूठ में उनकी पूजा क्यों करते हो?' मेरी आवाज़ रुलाई से फटती है, गुस्से में मेरे मन में आता है कि आरती का जलता कपूर निगल कर अपने इस दगाबाज गले को दाग दूँ। 'क्यों?' मैं फिर पूछना चाहती हूँ, पर रो प ने के डर से चुप हूँ। मैं रोना नहीं चाहती। इनके सामने, खासकर।

हरी की माँ ताज्जुब से पंजा गाल पर टिकाकर कहती है, 'माँ री माँ, सुनो तो इसकी बात? ल की हो के ऐसा गुस्सा?'

नानी ल कियों को सवा-सवा रुपया दे रही है। 'सवा रुपये से दस खट्टी गोलियाँ एक साथ ली जा सकती हैं। इतना दीवार से कह कर नानी मेरी ओर भी रुपये के नोट में लिपटे पैसे बढ़ाती है। नानी के अँगूठे की नोक पर रोली का निशान खून का धब्बा जैसा लगता है। मैं दीवार की ओर पीछे हटती हूँ। 'मुझे नहीं चाहिये इन औरतों का हलवा-पूरी, टीका, रुपया।' 'मैं देवी नहीं बनूँगी !' मैं चिल्लाती हूँ, इतनी जोर से, कि आँगन में बाजरा चुगते कबूतर पर फटफटा कर उ जाते हैं। ज्यों कहीं गोली चली हो।

बस अब और नहीं

ममता रहेजा

बस अब और नहीं
ब्याही जाऊँ या रह जाऊँ
अनब्याही सदा के लिए
पर अब बता दूँ तुम्हें
मैं कोई नुमाइश की चीज़ नहीं
जिसे रख दें कभी भी, कहीं भी
देखने को,
लोगों की छिद्रान्वेषण करती
निग़ाहों का सामना करने को
तौल-मोल करते उन सबको बता दूँ
इन्सान हूँ मैं, सामान नहीं
मेरे अन्दर भी अहसास हैं
किसी के द्वारा चाहे जाने की आस है
पर इन अहसासों को रौंद जाए
कोई भी, कहीं भी
तो जाए मेरी आस, मेरा विश्वास
पल भर में
कर जाये हताहत मेरे सपनों को
अपनी एक कुटिल मुस्कान से
निरुत्तर से छो जाए कुछ प्रश्न
अपने होने पर ही लगने लगे प्रश्नचिह्न
अपनी ही निग़ाहें करने लगें
कुछ सवाल,
जिनके उत्तर ढूँढने में
अपने ही हाथों कर लूँ
अपने ही मन को, आत्मा को
लहुलुहान, घायल
बस अब और नहीं....
ब्याही जाऊँ या रह जाऊँ
अनब्याही सदा के लिए
पर अब बता दूँ तुम्हें
मैं भी अनमोल हूँ
मेरे संस्कारों का,
विचारों का, शिक्षा का
क्या कोई मोल नहीं !
बस अब और नहीं...

दीपशिखा

सुधा गोयल

आज उसकी मृत्यु को पूरा एक वर्ष हो गया है। मैंने उसे भूलना चाहा है, पर वह एकांत के क्षणों में मेरे मन-मस्तिष्क पर छा गयी है। उसका व्यक्तित्व हावी हो गया है। वह मेरी पत्नी थी। अग्नि के सम्मुख सप्तपदी की साक्षी मेरी ब्याहता पत्नी उमा, जिसे मैंने पत्नी से अधिक कभी कुछ न समझा। पत्नी यानी पति का नाम, पति के बच्चे, पति का घर, रोटी कप ा यही सब एक पत्नी को चाहिये और मैं देता रहा। इसके अलावा और कुछ भी उसे चाहिये, या मुझे कुछ देना है, इस कुछ को मैंने मात्र अपने लिए समेटे रखा। उसने भी कभी कुछ न कहा। कभी कहीं असंतोष का भाव उसके चेहरे पर न आया। वह पूर्णरूप से खुश थी। एक पत्नी को जो चाहिये वह उसे मिला था। पति के रूप में मैं देने योग्य था। तीस सालों तक वह मेरे साथ रही। पत्नी इतने दिनों में एक आदत बन जाती है। यह मैं मानता हूँ, पर आदत से प्रेम भी किया जाता है, या प्रेम और आदत एक-दूसरे के पूरक हैं, मैं ऐसा नहीं मानता। आदमी जानता है कि फलाँ आदत गलत है, उसे छो देनी चाहिये, इसके लिए प्रयत्न भी करता है, कभी छो भी सकता है। अतः जिसे प्रेम किया जाता है उसे छो ा नहीं जा सकता है। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि पत्नी एक आदत है।

जिस कुछ को मैंने सहज भाव से अपने लिए समेटे रखा, उस कुछ को पाने की कितनी लालसा उसमें थी, यह मुझे उसकी डायरी पढ़ कर ही पता लगा। मैं तो समझा था कि उसे लिखना-पढ़ना कुछ भी नहीं आता। मानवी अनुभूतियों को वह गँवार क्या समझे? कितनी ब ी भूल थी। कितना मिथ्याहंकार था। ज्यों-ज्यों मैं डायरी के पृष्ठ पढ़ता गया मैं उसके सामने हारता गया। पृष्ठों से उसका चेहरा एक दिव्य आभा लिए झाँकने लगा। मेरी आँख शर्म से झुकने लगी। वह हारकर भी जीत गयी और जिसे मैं अपनी जीत समझे बैठा था वह सचमुच मेरी हार निकली। मैं अपनी ही दृष्टि में गिर गया।

औरत कितनी भी भोली हो, कितनी ही नासमझ हो, पति के दिल की भाषा पढ़ने की शक्ति उसके पास अवश्य होती है। बेशक वह मुँह से कुछ न कहे। स्वयं पूरा जीवन दीपशिखा-सी जलती रहती है। उफ् नहीं करती। कितना धैर्य है उसमें। क्या पुरुष इतना धैर्यवान है। तिल-तिल स्वयं को जलाकर प्रकाश देना कोई औरत से सीखे। इन तीस सालों में मैं एक बार भी उसे न समझ सका। हालाँकि बुद्धिजीवियों में मेरी गणना होती है, मेरी विद्वता का सब लोहा मानते हैं। मैं पूरा समय किताबों के काले अक्षरों को पढ़-पढ़कर महानता व बुद्धिमत्ता का मुखौटा लगाये स्वयं को भरमाता रहा पर इंसानी दिलों को पढ़ने की ताकत स्वयं में पैदा न कर सका। इंसान का मन पढ़ने के लिए किसी स्कूल-कॉलेज की आवश्यकता नहीं होती। व्यक्ति के क्रियाकलाप और आचरण स्वयं ही सब कुछ कह देते हैं।

उमा ने बहुत जल्दी मुझे खुली किताब की तरह बाँच लिया था और स्वयं को मेरी इच्छानुसार ढाल लिया था। आज मैं जितना भी सोचता हूँ मेरा सिर उतना ही झुकता जाता है। मैं अपनी ही दृष्टि में गिर गया हूँ। उमा मर कर अमर हो गयी है। वह 'कुछ' जिसे मैंने अपने लिए सुरक्षित रखा था, उमा की महानता के आगे कुछ भी नहीं है।

काश ! ये डायरी मैंने पहले पढ़ी होती तो उमा के चरणों में सिर रख कर अपना अपराध कुछ कम कर सकता। आज वह नहीं है, मेरा अपराध मुझे अशांत किये है। इस अपराध की सजा क्या हो जिससे मेरी आत्मा को शांति मिल सके, यही सोच मुझे उद्वेलित किये है।

डायरी के पन्नों पर लिखी इबारत का कोई नाम नहीं होता। कोई नाम है भी नहीं। उन सब पन्नों को समेट जो इबारत मुझे मिली, जिसने स्वयं जल-जलकर आँखों के अंजन से इबारत रची, मैं उस इबारत का नाम दीपशिखा दे रहा हूँ। इससे अच्छा कोई अन्य नाम हो भी नहीं सकता। मैं अपना अपराध आप सबके सम्मुख रख रहा हूँ। आप जो भी सजा मुझे देंगे मंजूर होगी। मैंने उसमें कहीं कुछ भी संशोधन नहीं किया है। शायद डायरी के पन्नों के ये स्याह शब्द मुझ जैसे अन्य मिथ्यादंभी व्यक्तियों

को राह दिखा सकें। मेरी तरह उन्हें पश्चाताप की अग्नि मे जलना प`, यह भी मेरा उद्देश्य है। डायरी की इबारत इस प्रकार थी -

मैं जानती हूँ नरेश, कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं। छल से तुम्हें मेरे योग्य बनाया गया है। तुम छले गये हो। जिन परिस्थितियों में तुम छले गये कोई भी छला जा सकता था, पर तुम्हारी दृष्टि में मैं छलनामयी हो गयी, क्योंकि छल का निमित्त मैं ही थी। मुझे भी इस बात का दुख है। तुम्हारा जीवन, तुम्हारी महत्वाकांक्षाएँ मेरे ही कारण ज हो गयीं। तुम अनंत आकाश में उ ना चाहते थे, तुम्हें लगा कि मैंने तुम्हें कैद कर लिया है। तुमने स्वयं को कटे पंख पाखी-सा समझा। तुम्हें लगा था कि तुम महज़ फ फ ा सकते हो, उ नहीं सकते। तुमने इस स्थिति के बारे में बिलकुल सोचा ही न था।

कभी-कभी ऐसा बहुत कुछ घट जाता है जिसके बारे में इंसान कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसा ही कुछ हमारे साथ भी हुआ। जो कुछ भी घटित हुआ उसके लिए हम दोनों के परिवार वाले ज्यादा दोषी हैं। पर तुमने अनकहे ही सारा दोष मेरे सिर मढ़ दिया है, मुझे जरा भी शिकायत नहीं है। दोष कमजोर का होता है। 'समरथ कह नहीं दोष गुसाईं' मैं पत्नी हूँ और सबसे ब ी बात कि मैं औरत हूँ। औरत होना ही सबसे ब ा दोष है।

बेशक तुमने कभी अपनी जबान से कुछ भी न कहा। जो इक पत्नी को मिलना चाहिये उसे तुमने मुझे दिया। और मैंने उसे तुम्हारा प्रसाद समझ कर ग्रहण किया। इतना ही मिल गया यही क्या कम है। पर स्वाति नक्षत्र-रूपी नेह की एक बूँद के लिए मैं जीवन-पर्यन्त चातक-सी प्यासी रही। तृषा से मेरी दृष्टि तुम्हारे चेहरे पर लगी रही, तुम्हारी आँखों में कुछ टटोलती रही और हर बार शून्य में गूँजती आवाज़ की तरह टकरा-टकराकर मेरे पास वापस आती रही।

सब कुछ भरा-भरा था। खूब अपनत्व से भरा शोरगुल था। पर मेरे मन में सन्नाटे उग आये थे। मै सबके बीच में नितांत अकेली थी बिलकुल तुम्हारी तरह। तुम अपने उस 'कुछ' के साथ जी रहे थे और मैं तुम्हारा 'कुछ' यानी पूर्ण समर्पण पाने के लिए जी रही थी। इसी उम्मीद में कि मरुस्थल में भटके राही को कभी तो पानी की झलक मिलेगी।

तुम बहुत कंजूस रहे नरेश। तुम क्या जानो समर्पण क्या होता है। तुमने तो ख़्यालों की अपनी एक अलग ही दुनिया बसा ली थी। तुम उसी में डूबे रहते थे। उबरकर देखना तुम्हें नहीं आया या तुम उबरना नहीं जानते थे। तुम सोचते होगे तुम ऐसा करके मुझ पर कोई एहसान कर रहे हो। अपना फर्ज़ पूरा कर रहे हो, पर यूँ तुम्हें एकांत में मानसिक हत्या करते देख मुझे बेहद कष्ट होता था। बस यही सोचती रहती कि ऐसा क्या कुछ करूँ कि तुम्हें रोक सकूँ।

तुम रात-दिन किताबों में डूबे रहते। जाने किस शांति की तालाश तुम उन पृष्ठों में कर रहे थे जो निर्जीव थे, जो काले थे। उन शब्दों में तुम कुछ खोज रहे थे, जो नितांत तुम्हारे न थे। यदि खोजना ही था तो स्वयं शब्द गढ़ते फिर उत्तर भी समझ लेते। दूसरों के कंधों पर बंदूक तानकर भी कहीं अचूक निशाने लगे हैं !

तुम पलायनवादी हो। कायर नहीं कह रही। न पतिस्थितियों से समझौता करना आता है, न टकराना। तुम केवल भटकना जानते हो। स्वयं को भरमाये रखने का भटकना कितना आसान तरीका है। तुम स्वयं से भाग रहे हो, अपने विचारों से भाग रहे हो। न कोई दिशा है न उद्देश्य। उद्देश्यहीन दौ भटकन ही तो है। तुम पढ़े-लिखे हो, विद्वान हो, तुम्हारे बारे में सही-सही धारणा बना सकूँ, इतनी समझ मुझे कहाँ है। पर इतना तो जानती हूँ कि पति-पत्नी का एक रिश्ता ब ा भावपूर्ण होता है, ब ा अपनत्व भरा है। एक-दूसरे को जी लेने के बाद भी पूर्ण तुष्टि नहीं मिलती। और. . . .की चाह बनी रहती है। आँखों में प्यार और समर्पण का उद्दाम वेग लहराया करता है। चेहरा कितना सौन्दर्यमय हो जाता है। वाणी से ध्वनि के मधुर झरने फूटने लगते हैं, कानों में घंटियाँ-सी बजने लगती हैं। मौका मिलते ही अधर फ क उठते हैं, हाथ आलिंगनबद्ध हो जाते हैं। दाम्पत्य जीवन की ऐसी चेष्टाएँ ब ी भावप्रधान होती हैं। तभी एक से दूसरे के मन में त्याग और श्रद्धा पैदा होती है। त्याग से त्याग फलित होता है।

तुम्हारे चेहरे पर इन्हीं भावों की एक झलक देखने को मैं आतुर रही। यदि तुम एक बार अनुरागपूर्ण दृष्टि से मुझे देख लेते, मैं जीवन की सार्थकता पा लेती। मेरा पत्नीत्व सफल हो जाता।

पर न कभी तुम्हारी आँखों में चमक उभरी और न अधर फ फ ाये। कोई उत्कंठा भी तुम्हारे पास नहीं है। है मात्र खोज, चि चि ाहट ! पता नहीं क्यों?

एक बार तुम्हारी लिखी कुछ पंक्तियाँ पढ़ी थीं। तुमने लिखा था, 'कुछ रिश्ते मात्र ढोने के लिए होते हैं, जिन्हें न तो उतार कर फेंका जा सकता है, न गले लगाया जा सकता है, बस पूरी उम्र ढोते हुए घिसटा जा सकता है। चाहे व्यक्ति टूट कर टुक े-टुक े हो जाये।' मुझे लगा था रिश्तों की यह बात तुमने अपने लिए ही लिखी थी। मन हुआ नीचे लिख दूँ - 'मेरे हमसफर ! बोझा ढोते थक गये हो। टूटो मत, झुको मत। बोझ की गठरी को उतार कर नीचे रख दो। थो ा विश्राम करो। रिश्ते जब बोझ बन जायें, उन्हें उतार फेंकना ही ज़रूरी है।'

पर मुझ अनसमझ की बात पर तुम खीजकर रह जाते। मैंने मन ही मन सौगंध खायी है, कभी प्रतिवाद नहीं करूँगी। लिखती तो प्रतिवाद हो जाता। तुम रात भर बैठे-बैठे पढ़ते रहते हो। मुझे ब ा तरस आता है। तुम्हारे साधना-पथ की पथिक बन उसे झा -पोंछ सकती, पर इतना अधिकार भी तुम नहीं देते। एक बार तुम्हारी किताबें झा -पोंछकर करीने से लगा दी थीं, देखते ही तुम दहा उठे थे - 'मेरी स्टडी में यह सब किसने किया?'

तुम्हारी प्रश्न-चिह्नित निगाहें मेरे चेहरे पर आ अटकीं। मेरी दृष्टि नत हो गयी। मैं अपराधिनी बन तुम्हारे सम्मुख ख ी थी, 'आगे से मेरी किताबें छूने की ज़रूरत नहीं।' एक और बम का धमाका मेरे दिल पर करके तुम अपनी स्टडी में चले गये। प्रतिक्रिया क्या हुई यह जानने के लिए तुम्हारे पास वक्त न था। मेरी छाती में असंख्य ज्वालामुखी धधक रहे थे। बाहर आना चाहते थे। मैंने अपने ओंठ भींच लिये, धुआँ आँखों के रास्ते बाहर निकाल दिया।

तुम्हारी तपस्या से अभिभूत हो तुम्हें शांति देने के लिए मैंने बालों में अँगुली फिराकर आश्वस्त करना चाहा, तुमने झटककर मेरा हाथ हटा दिया। मेरे दिल के आईने में एक और दरार प गई। तुम बैग लेकर कहीं जा रहे थे। 'कब लौटोगे?' 'पता नहीं। चलते समय टोका मत करो।' ब े अनमने मन से कह कर तुम चले गये। एक विष बुझा तीर आकर मेरे मन में धँस गया। मैं उफ् भी न कर सकी। तुम कहाँ जाते हो? क्यों जाते हो? कब लौटोगे? यह जानना मेरे पत्नी-धर्म में नहीं आता। मेरा धर्म तो केवल यही है कि तुम्हारी कुशलता के लिए कामना करूँ। तुम्हारे जाने के बाद मैं आँखें मूँदकर मन-ही-मन दोहराती 'हे प्रभु ! जीवन-संग्राम में भटके, स्वयं से भागते और ल ते मेरे पति को राह दिखाना।'

तुम लौटते, मैं सोचती, दो दिन के प्रवास के बाद तुम्हें कहीं मेरी याद आयी होगी, कोई चाह उम ी होगी। मौका पकर तुम मुझे अपने आगोश में समेट लोगे। ऐसा कभी कुछ नहीं हुआ। यंत्र-चालित-सी मैं और वैसे ही तुम अपने-अपने काम में व्यस्त हो जाते। तुम कप े बदलते, हाथ-मुँह धोते, मैं चाय का प्याला पक ा देती। चाय का घूँट भरते-भरते तुम दो-चार शब्दों में बच्चों की कुशलता पूछ लेते, बस इतना ही।

तुम हाथ धोकर लौटते, मैं सोचती तौलिये की जगह मेरे आँचल से पोंछोगे। मैं इसी इंतज़ार में आँचल का कोना थामे ख ी रहती। फिर कहीं कुछ पिघलने लगता। वैसे ज़िन्दगी में ऐसे बहुत कम अवसर आये जब मैं कहीं तुम्हारे साथ बाहर निकली। मन में एक साध होती, तुम्हारी पसंद का श्रृंगार करूँ, तुम्हारी पसंद की सा ी पहनूँ। तुम्हारी आँखों में अपने लिए प्रशंसा का भाव देखूँ। मैं पूछ बैठती, 'कौन-सी सा ी पहनूँ?'

'कुछ भी पहन लो, सब ठीक लगता है।' तुम्हारा दो टूक उत्तर मेरे दर्द को सहला जाता है।

'ये सा ी मुझ पर कैसी लगती है?'

तुम किताबों पर नज़र ग ाये ही उत्तर देते, 'ठीक है।' मैं सोचती क्या बस यही 'ठीक है' सुनने आयी थी? ठीक तो सभी कुछ चल रहा है।

दिन भर की थकान तुम्हारी बाँहों पर सिर रख कर उतारना चाहती। तुम पास होकर भी बेहद दूर रहते। कहीं खोये-खोये से। तुम्हारे स्पर्श में बेहद ठंडापन रहता। संबंधों के दायरों को निभाते समय तुम या तो हिंसक हो उठते या बेहद बेगाने। इन दोनों के बीच का संधि-स्थल मुझे नहीं मिला। मुझे अपना दाम्पत्य बलात्कार की आधार-शिला पर ख ा लगता।

पत्नीत्व की पूर्णता माँ बनने में है। मैं माँ बन उलझी रहूँ, तुम्हारे बारे में कुछ सोच न सकूँ, तभी तुम मुझे लगातार मेरी गोद में प्रसाद-रूप बच्चे थमा देते। मैं पाँच बच्चों की जननी बन कर भी

प्यासी रही। समुद्र के किनारे ख ा व्यक्ति खारे जल से क्या तृप्ति पायेगा? मेरी सेहत का तुम्हें ख़्याल न था। आठ साल में पाँच बच्चों की जननी बन मैं अस्थिपंजर मात्र रह गई। तुम्हें इस सबसे क्या मतलब? तुम अपना फर्ज पूरा कर रहे थे। रोटी, कप ा और शिक्षा देकर।

आज चारों तरफ तुम्हारा नाम है। तुम्हारी लिखी किताबें विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में लग रही हैं। सेमीनार और गोष्ठियों में तुम्हें आमंत्रित किया जाता है, तुम्हारा अभिनंदन होता है, तुम पुरस्कृत होते हो। मैं जानती हूँ तुम बहुत ऊँचे उठ गये हो, और मैं वहीं रह गई हूँ। तुम गगन बन गये हो मैं धरा ही हूँ। मैं तुम्हारे चरण-चिह्न समेट सकती हूँ, पर क्या कभी एक पल को भी तुम्हें स्मरण आया कि तुम इतने ऊँचे कैसे उठे? तुम्हारा यह साधना-पथ किसने बुहारा? घर-परिवार की चिन्ताओं से किसने मुक्त रखा? ये मेले किसकी चिताओं पर सजे हैं?

मैंने तुम्हें बहादुर समझा। तुम अपने परिवार के लिए पिता की इज़्ज़त बचाने के लिए, वह इज़्ज़त जो मैंने पिता के पास गिरवी रखी थी, तुम शहीद हो गये हो। तुमने अपने को समर्पित कर अपने पिता का कर्ज़ उतारा है। पिता का कर्ज़ उतारना हर बेटे का फर्ज़ है। तुम्हें तो परम तृप्ति मिलनी चाहिये। गर्व से सिर ऊँचा करना चाहिये था। शहीद का सिर ऊँचा होता है, वह अपनी ही कुंठा से दमित नहीं होता। तुम्हें स्वयं का शहीद होना या कहीं बिकना पसंद न था तो अपने पिता से कहते। अपने आक्रोश का शिकार मुझे क्यों बनाया? जहाँ तक पत्नी धर्म की बात है मैंने तन-मन से निभाया है। तुम्हारी खुशी को अपनी खुशी समझा है, तुम्हारे दुख को बहुत गहरे तक महसूसा है। काश ! तुमने भी समझा होता। पूरा जीवन बस एक बेज़ुबान गाय को खूँटे से बाँध कर चारा-पानी डाल कर अपने फर्ज़ की इतिश्री करते रहे। मुझे कोई शिकायत नहीं है तुमसे।

हाँ, नरेश ! यह सब समझाने वाली मैं कौन हूँ? मैं तो तुम्हारे पैरों की धूल भी नहीं। मुझे बताना भी नहीं चाहिये। मेरे सफर की अंतिम बेला निकट है। तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा, अब भी नहीं मागूँगी। मैं थकी-हारी पथिक तुम्हारे नाम को अपने माथे पर सजाये प्रयाण करना चाहती हूँ। बस एक ही कामना है। ढेरों पुरस्कार तुमने पाये। अपनी आँखों से अनुरागमय मुस्कान का एक पुरस्कार मुझे भी दे दो। मेरा सफर पूर्ण हो जायेगा। मुझे जीवन की सार्थकता मिल जायेगी। मै समझूँगी तुमने मुझे माफ कर दिया है। ********

यह इबारत डायरी के पन्नों से उतारी है। मेरी हृदयहीनता का परिचय आप सबको मिल गया होगा। आपकी प्रतिक्रियाएँ ही मेरी सजाएँ होंगी। जो चाहे दें, शायद मेरा अपराध कम हो सके !

हालत मेरी

पदमचन्द्र सिंघी

देखना चाहता हूँ,
कोशिश भी करता हूँ,
लेकिन नज़र की हद में दूर-दूर तक
कुछ भी तो नहीं बस एक बियाबान दिखाई देता है।
सोचना चाहता हूँ, ईमानदारी के साथ -
लेकिन दिमाग खाली हो गया है
नहीं मिलता है कोई आकार और न कोई प्रकार।
प्यार करना चाहता हूँ, पहल भी करता हूँ -
ज़मीन पर चलते-फिरते-रेंगते हर प्राणी को
लेकिन भरोसा ही नहीं है कहीं भी किसी को।
खूब डरे हैं सब -
गुस्से से भरे हैं सब -
मोहब्बत और मसख़री -
भाग चुकी है बहुत दूर।
नफ़रत से भरा है माहौल
ऊपर से भरा-भरा लगता है,पर भीतर है पोल।
ज़ज़्बात ज़िन्दगी के पथरा गये हैं सब
बुतों ही को बंदगी करना इंसान को भा गया है।

हिंदी संस्कृति बनाम सामासिक संस्कृति

डा. विजयराघव रेड्डी

भाषा केवल अभिव्यक्ति की माध्यम नहीं होती, वह पूरी संस्कृति होती है। हिंदी एक भाषा है, उसका अपना एक समाज है जहाँ वह अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में काम देती है और उस समाज की अपनी संस्कृति है जिसकी अभिव्यक्ति हिंदी के माध्यम से पूर्णतः संभव है।

पहले संस्कृति शब्द पर विचार करेंगे। कहा जाता है कि यह अँग्रेजी के 'कल्चर' शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त करने के लिए नव निर्मित शब्द मात्र है जब कि वैदिक वा ्मय में यह शब्द नहीं मिलता। वहाँ 'संस्कार' तो है। इसी 'संस्कार' शब्द से संस्कृति शब्द बना जो बहुप्रचलित हो गया। पाश्चात्य दृष्टिकोण में कल्चर की जो अवधारणा बनती है, वह भारतीय 'संस्कार' शब्द से जनित 'संस्कृति' की अवधारणा से भले ही पूर्णतः मेल नहीं खाती हो, आजकल हम 'संस्कृति' शब्द को कमोवेशी में 'कल्चर' के अर्थ में ही प्रयोग कर रहे हैं।

'संस्कृति क्या है?' इस को लेकर कई व्याख्याएँ की गयी हैं। इस पर बृहद सामग्री उपलब्ध है। बहुत परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। असलियत में यह परिभाषित होकर भी अपरिभाषित ही है। फिर भी यहाँ इसकी दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। एक के मुताबिक संस्कृति शब्द का अर्थ संस्करण, परिष्करण और परिमार्जन है। इसका संबंध संस्कार से अर्थात् उत्तम बनाने वाली क्रिया-कलापों से है। इसलिए यह स्वीकार किया गया है कि किसी देश के दर्शन, परम्पराओं और कलाओं, धर्म, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, मानवीय मूल्यों, आचार-विचार का संचित स्वरूप ही संस्कृति है। संस्कृति शिष्टता, सौजन्यता और शील की आधार-शिला है। संस्कृति मानव की बनायी गयी रचना है। इसका संबंध किसी देश, जाति, समाज या समुदाय में प्रचलित धार्मिक आस्थाओं, प्रवृत्तियों, व्यवहार, रीति-रिवाज, सामाजिक व साहित्यिक-कलात्मक मान्यताओं से होता है और ये सभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न देश, जाति, समाज या समुदाय की संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न भी होती हैं। दूसरी व्याख्या युनेस्को के एक सम्मेलन में परिभाषित है। उस में कहा गया है कि संस्कृति को महज़ कलात्मक संदर्भों में परिभाषित करना उचित नहीं है। वह खेल-कूद से लेकर शैक्षिक कार्यक्रमों तक सृजनशील कलाओं की प्रेरणा से लेकर श्रोता समूहों की पसंदों तक, सांस्कृतिक उत्पादकों के साधारण उपभोग से लेकर स्वतः प्रेरित सांस्कृतिक गतिविधियों तक ऐसी तमाम परिघटनाओं को अपने अंदर समाहित किये रहती है। संस्कृति की धारणा, संबंधित जन-समूल की जीवन-शैली से संबंध रखती है। लिहाज़ा सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को समेटती है।

राहुल सांस्कृत्यायन का मानना है कि संस्कृति पीढ़ियों के प्रभाव या संस्कार का प्रवाह है। इसलिए संस्कृति अचल नहीं है। उन के अनुसार संस्कृति और धर्म एक चीज़ नहीं है। वे कहते हैं कि एक चीनी चाहे बौद्ध हो, या मुसलमान या इसाई या कनफूसी, लेकिन उस की जाति चीनी रहती है। इसी तरह एक जापानी चाहे बौद्ध हो या शिंतो धर्मी लेकिन उस की जाति जापानी ही रहती है। कहने का तात्पर्य है कि धर्म के बदल जाने से जाति और इसी प्रकार संस्कृति नहीं बदलती है। संस्कृति का संबंध जातिगत जन समुदाय से है। अर्थात् समुदाय की भाषा से संस्कृति का सीधा संबंध जु जाता है।

भाषा और संस्कृति को लेकर तथा दोनों के पारस्परित संबंधों को लेकर पहले भी बहुत कुछ विचार किया गया है। इन दोनों के संबंधों के संबंध में भी कुछ सिद्धांत भी प्रचलित हैं। इन में से दो सिद्धांतों का परिचय प्राप्त कर आगे बढ़ेंगे। पहला है 'भाषा अवधार्यवाद' (लैंग्वेज डिटरमिनिज़्म) और दूसरा है 'भाषा सापेक्षता' (थियरी ऑफ लिंग्विस्टिक रिलेटिविटी)।

भाषा अवधार्यवाद की धारणा है कि, 'वास्तविक जगत या यथार्थ का अवबोधन व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से कर लेता है। उस के अवबोधन का निर्धारक उस की भाषा होती है, अतः भिन्न-भिन्न भाषा भाषी एक ही वस्तु या यथार्थ का भिन्न तरीके से अवबोधन कर लेते हैं।' अर्थात् वास्तविक जगत के अवबोधन में भाषाई संरचनाओं का ब ा हाथ रहता है। प्रकारांतर से अवधार्यवाद का यह दावा है कि भाषा समुदाय की संस्कृति उस की भाषा में प्रतिबिंबित होती है। अर्थात् समुदाय विशेष

की भाषा उस समुदाय की संस्कृति से अविनाभाव संबंध रखती है। प्रत्येक भाषा की शब्दगत विशिष्टताएँ जो हैं उस भाषा समुदाय के सांस्कृतिक तत्व जैसे; क्रिया-कलाप, आचार-विचार, रीति-रिवाज आदि को सहज ही प्रस्फुटित व प्रतिबिंबित कर देती हैं। तात्पर्य है कि यहाँ दो स्तरीय अवधार्यता को हम देख सकते हैं - (१) संस्कृति भाषा का निर्धारक होती है, यानी संस्कृति के मुताबिक भाषा होती है; संस्कृति की अभिव्यक्ति करने की योग्यता उस भाषा में रहती है, संस्कृति-अभिव्यक्ति के लायक भाषा अपने आप को रूपायित कर लेती है। अतः संस्कृति और भाषा में एक सापेक्षता देखी जा सकती है। और (२) भाषा हमारे वास्तविक जगत के दृष्टिकोण का निर्धारक होती है, यानी भाषा दुनिया को देखने के लिए एक प्रकार का चश्मा है। यह चश्मा केवल एक भाषाई समाज के लिए दृष्टिदान करता है। दूसरा भाषाई समाज इस चश्मे से नहीं देख पाता। दूसरे भाषाई समाज का सदस्य इस चश्मे से देखना चाहेगा तो उसे उस भाषा को सीखना होता है। उस भाषा के सीखने के बावजूद वह उससे धुँधला ही देख पाता है। अगर भाषा चश्मा है तो शब्दावली चश्में के शीशे (लेन्स) के समान है। भाषा में शब्दावली प्रमुख रोल अदा करती है। शब्द जो है अर्थ की अभिव्यक्ति के साधन हैं। अर्थ-शाब्दिक सापेक्षता के साथ सांस्कृतिक सापेक्षता मेल खाती है। प्राचीन काल से ही यह सोचा जा रहा था कि भाषा विशेष की सम्पूर्ण अभिरचना उस भाषा के प्रयोक्ताओं के मानस को प्रभावित करती है। उनकी चिंतन-सरिणी अन्य भाषाओं के प्रयोक्ताओं की तुलना में कुछ विशिष्ट और भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ तक कि उनके दृश्य जगत के अनुभव भी अलग होते हैं। इस से यह विचार सामने आया कि भाषा विशेष के प्रयोक्ता की मानसिक संरचना में और उस भाषा की संरचना में साम्य या सापेक्षता देखी जा सकती है। यही सिद्धांत जो यह प्रतिपादित करता है कि भाषा के प्रयोक्ताओं के क्रिया-कलापों पर उस की भाषा का विशेष प्रभाव रहता है, भाषा सापेक्ष सिद्धांत कहलाता है। भाषा अवधार्यवाद और भाषा सापेक्षता सिद्धांत के तहत भाषाई संरचना के महत्व को लेकर बहुत तूल देते हुए यह कहा गया है कि भाषाई संरचनाओं का पाँच मानसिक क्रिया-कलापों के साथ अन्योन्याश्रित संबंध या सापेक्षता-भाव स्थापित किया जा सकता है वे हैं - (१) संज्ञानात्मक व्यवहार (संक्रियाएँ, बोध, चिंतन, स्मरण) (२) व्यवहार के अभिप्रेरणागत एवं भावोत्तेजना के पक्ष (३) संस्कृति की संरचना (४) वैयक्तिक चरित्र और (५) राष्ट्रीय चरित्र।

भाषा और संस्कृति के उपर्युक्त पारस्परिक संबंध के परिप्रेक्ष्य में जब हम हिंदी भाषा और संस्कृति की चर्चा करते हैं तब सर्वप्रथम अन्य भाषाओं की तुलना में हमें हिंदी की कुछ विलक्षणताएँ दृष्टि-गोचर होती हैं। इन विलक्षणताओं को मोटे रूप से दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। वे हैं; हिंदी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और भाषिक परिवेश। भाषिक परिवेश को पुनः तीन भागों में जैसे (क) अंतर जन-पदीय परिवेश (ख) हिंदी उर्दू की साहित्यिक शैलियों का परिवेश और (ग) अपने निजी क्षेत्र के बाहर का परिवेश। इनका विवरण क्रमशः प्रस्तुत है :

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश : हिंदी के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि, 'सामाजिक-सांस्कृतिक जातीयता की दृष्टि से हिंदी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा है। विशाल हिंदी भाषी जनसमूह का गठन, उसकी जातीय भाषा का विकास, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थान और उसके साहित्य की प्रगति सारे भारत की प्रगति की महत्वपूर्ण क ी है। अपनी विशेषताओं के फलस्वरूप हिंदी सारे देश की प्रगति एवं सांस्कृतिक विकास की क ी के रूप में काम करने में सक्षम रही है।' इस संदर्भ में अज्ञेय जी के विचार भी दृष्टव्य हैं। वे कहते हैं कि, "हिंदी अपने आरम्भ से ही प्रतिष्ठान के विरोध की भाषा रही है। न कभी प्रतिष्ठान ने उसको अपनाया, न उसे कभी यह सोचने का कोई कारण या आधार मिला कि वह प्रतिष्ठान के साथ संयुक्त है, या हो सकती है। इस विरोध की भावना ने उसे एक विलक्षण आत्म-विश्वास दिया, एक गहरे धार्मिक संस्कार के बीच भी लौकिक जन मात्र के महत्व का बोध कराया। प्रतिष्ठान विरोध अपनी मूल प्रवृत्ति का निर्वाह करते हुए हिंदी दूसरी ओर परम्परा का संवहन करने वाली भाषा भी बनी रही। अपने स्वाभाव और अपनी प्रादेशिक स्थिति के कारण हिंदी में निरंतर एक सांस्कृतिक केन्द्रोन्मुखता रही जिसके कारण भारत भर में होने वाले सांस्कृतिक विकास को और चिंतन की नयी प्रवृत्तियों को उसने ग्रहण किया और फिर समस्त देश में वितरित किया। दक्षिण भारत के और महाराष्ट्र के (भक्ति आंदोलन) प्रभाव हिंदी ने ब्रज मंडल में ग्रहण किये और फिर सुदूर असम तक वितरित कर दिये। इसी प्रकार बंगाल और नेपाल से सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को ग्रहण कर के उसने सुदूर

दक्षिण तक पहुँचाया। सही अर्थों में हिंदी एक 'सांस्कृतिक क्लियरिंग हाउस' का काम करती रही।" इसी प्रकार हिंदी उन दिनों में ब्रज मंडल से बाहर सारे देश में समान रूप से सम्मान पाती थी। और इसका कारण यह नहीं था कि ब्रज मंडल का कोई समर्थ और शक्तिशाली राज्य था जिसके दब-दबे के कारण दूसरे राज्य उसकी भाषा को सम्मान देते हों। कारण यही था कि हिंदी भारतीय संस्कृति की समग्रता की वाणी भी थी, भारतीय चेतना के प्रसार में योग देती थी और भारतीय प्रतिभा की उपलब्धियों को सारे देश से संग्रह कर के सारे देश में वितरित करती थी। असम के ब्रज बुली साहित्य में, केरल के राजा स्वाति तिरुनाल के गीतों में जो भाषा प्रयुक्त है, वह ब्रजभाषा ही है। अभी हाल ही में आंध्र प्रदेश की एक पुरानी रियासत 'वेंकटगिरि' में जो तिरुपति नगर के निकट है, ब्रजभाषा में लिखित एक पांडुलिपि मिली है, जिसमें ब्रजभूमि की चौरासी कोस की यात्रा का क्रमबद्ध वर्णन है। इसकी लिपि तेलुगु है। स्पष्ट है कि ब्रजभाषा उन दिनों अन्य प्रदेशों में वहाँ की स्थानीय लिपियों में भी लिखी जाती रही है। यहाँ यह याद रखने की आवश्यकता है कि इस प्रकार के संग्रह व वितरण का कार्य हिंदी करती रही, हिंदी भाषा के माध्यम से होता रहा। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिये कि ये कार्य हिंदी भाषी, या मध्य देश के निवासी ही जिनकी मातृभाषा हिंदी हो, निर्वाह करते रहे। इस कार्य में सारे देश के मनीषी लगे रहे, भले ही वे कोई भाषा बोलने वाले हों या फिर किसी अंचल के रहने वाले क्यों न हों।

भाषिक परिवेश : सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश के साथ हिंदी का जो भाषिक परिवेश है, वह भी विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में विलक्षण कहा जा सकता है। इस परिवेश की जो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, उनमें से यहाँ तीन का उल्लेख किया जा सकता है।

(क) हिंदी का अंतर जनपदीय परिवेश : हिंदी की जनपदीय बोलियाँ जो संख्या में किसी इतर भाषा की तुलना में प्रायः अधिक हैं जैसे : ब्रज, कन्नौजी, ख ीबोली, कौरवी, बाँगरू/हरियाणवी, बुंदेली, निमा ी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बघेली, मैथिली, मगधी, भोजपुरी, मारवा ी, जयपुरी, हा ौती, मेवाती, मालवी, कुमाँयूनी, गढ़वाली, जौनसारी, भद्रवाही, चमेआली, क्योंठली, कुलुई आदि हिंदी भाषा को प्रभावित कर उसके गठन व विकास में योग देती हैं और स्वयं भी हिंदी से प्रभावित होकर परिवर्तन की गति को प्राप्त करती रही हैं। वास्तव में ये ऐसी बोलियाँ हैं जो भौगोलिकता के आधार पर वर्गीकृत हैं और ये हिंदी क्षेत्र के अंतर्गत मुख्य रूप से बोलचाल के रूप में व्यवहृत हैं। ये प्रादेशिक बोलियाँ या स्थानीय बोलियाँ भी कहलाती हैं। प्रादेशिक या स्थानीय रूप भेदों से युक्त ये बोलियाँ अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं, अपितु एक ही भाषा के विवध रूप मानी जाती हैं। जिस भाषा का प्रादेशिक विस्तार जितना विस्तृत होगा, उसमें ऐसी प्रादेशिक बोलियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। कहना न होगा कि हिंदी का निजी क्षेत्र (जो हिंदी बेल्ट कहलाने लगा) या व्यवहार क्षेत्र विस्तृत है और इसलिए इसकी बोलियों की संख्या भी अधिक है।

(ख) हिंदी-उर्दू की साहित्यिक शैलियों का सह-अस्तित्व : ये दोनों शिष्ट रूप या साहित्यिक शैलियाँ कभी शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में रह कर एक-दूसरे को प्रभावित और समृद्ध करती रहती हैं और कभी अशांतिपूर्ण तनाव की स्थिति में रहती हैं। वास्तव में यह विचित्र स्थिति है जो संसार में बिरले ही मिलती है। वैसे देखा जाये तो सामान्य हिंदी और सामान्य उर्दू जो बोलचाल में प्रचलित हैं, इनमें अंतर नगण्य-सा है। लेकिन समस्या या तनावपूर्ण स्थिति वहाँ उत्पन्न हो जाती है जहाँ उच्च हिंदी या साहित्यिक हिंदी और उच्च उर्दू या साहित्यिक उर्दू की बात आती है, जहाँ हिंदी संस्कृत की ओर झुक जाती है और उर्दू अरबी और फारसी की तरफ़। कुछ लोगों के विचार में उर्दू मुसलमानी उपनिवेशवाद की उपज है और उसका संबंध मुसलमानों से है। कुछ भी हो वैविध्यपूर्ण साहित्यिक/राजनीतिक विशेषाधिकार (प्रिवलेजस) तथा भिन्न प्रतिबद्धता के कारण ये दोनों हिंदी क्षेत्र में दो भिन्न सम्प्रदायों से संबद्ध भाषाएँ मानी जाने लगीं। यह भी यहाँ स्मरण रखने की बात है कि मौखिक व्यवहार में ये दोनों लगभग एक हो जाती हैं, लिखित रूप में आ कर अलग बन जाती हैं।

(ग) अपने निजी व्यवहार क्षेत्र के बाहर का परिवेश : हिंदी भाषा अपने क्षेत्रगत राज्य उत्तरांचल, झारखंड, छत्तीसगढ़, हरयाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राज्य तथा केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली एवं चंडीगढ़ की सीमाओं के बाहर के इलाकों में जैसे अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, पंजाब एवं जम्मू व कश्मीर तक फैल जाती है जहाँ हिंदी दूसरी देशीय भाषा या दूसरी मातृभाषा के रूप में काम में आती है। डॉ. खूबचंदानी देश के बाहर पाकिस्तान के पंजाब प्रांत को भी

हिंदी के व्यवहार क्षेत्र में सम्मिलित कर इसे, हिंदी-उर्दू-पंजाबी क्षेत्र को, बृहद हिन्दुस्तानी क्षेत्र (ब्राड हिंदुस्तानी बेल्ट) के नाम से अभिहित करते हैं। इस बृहद क्षेत्र में हिंदी बोलने वालों को वे तीन विभागों में बाँटते हैं। जैसे : (१) देशीय भाषाभाषी : (क) दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में रहने वाले (ख) कहीं बाहर से आ कर हिंदी-उर्दू-पंजाबी क्षेत्र के शहरी इलाकों में रहने वाले (ग) ऐसे अप्रवासी लोग जो हिंदी-उर्दू-पंजाबी क्षेत्र के बाहर बस गये। (जैसे आंध्र प्रदेश के दक्खिनी भाषी) २. हिंसी से जु` हुए/चिपके हुए लोग : वे लोग जिनकी मातृभाषा हिंदी-उर्दू-पंजाबी क्षेत्र के अंतर्गत बोली जाने वाली कोई बोली/भाषा (जैसे लहंदा, मुल्तानी आदि) हो लेकिन, अपने को हिंदी के देशीय भाषी के रूप में स्वीकार करते हैं। ३. हिंदी को अन्य भाषा के रूप में प्रयोग करने वाले : ये वे लोग हैं जिनकी मातृभाषाएँ हिंदी-उर्दू-पंजाबी क्षेत्र के बाहर की भाषाएँ हैं और जिन्होंने हिंदी सीख रखी है।

भाषा व्यवहार के इस वैशिष्ट्य को हिंदी के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भाषिक परिवेश तथा हिंदी की समामेलन की प्रवृत्ति को दृष्टि में रख कर हिंदी संस्कृति का अध्ययन किया जाना चाहिये। सुविधा के लिए हिंदी संस्कृति का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण कर अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है :

हिंदी संस्कृति

निजी क्षेत्र का परिवेशगत

- नगरीय (भद्र लोग)
  - हिंदी मानक हिंदी (उच्च हिंदी)
  - उर्दू मानक उर्दू (उच्च उर्दू)
- जनपदीय (ग्रामीण लोग) हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं से संबंधित हिंदी का अवमानक और उप मानक रूप

निजी क्षेत्र के बाहर का परिवेशगत (क्षेत्र विशेष के भाषा भाषियों के संसर्ग के कारण भाषारूप में आयी भिन्नता के संदर्भ में संस्कृतिगत वैशिष्ट्य का अध्ययन)

ऊपर दर्शाये गये वैशिष्ट्यों के कारण हिंदी संस्कृति का संदर्भ भारतीय संस्कृति से जु जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति और हिंदी पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि, 'भारतीय संस्कृति के साथ हिंदी भाषा के संबंध पर विचार करते समय हमें यह याद रखना चाहिये कि भारतवर्ष हिंदी भाषी क्षेत्र से ब ा है। समूची भारतीय संस्कृति के निर्माण में ऐसे बहुत-से उपादान भी हैं जो हिंदी भाषी प्रदेशों के बाहर (निजी क्षेत्र के बाहर का परिवेश) से आये हैं। फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी भारतवर्ष की सर्वप्रधान भाषा है, वह उसके मर्मस्थल में बोली जाती है और इस विशाल देश की एक बहुत ब ी संख्या इसी भाषा के किसी न किसी रूप का व्यवहार करती है। इसलिए भारतीय संस्कृति के पिछले हजार वर्षों के रूप को समझने के लिए हिंदी एकमात्र नहीं तो सर्वप्रधान भाषा ज़रूर है। हिंदी भाषा की उत्पत्ति के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति एक विशेष दिशा में मु चुकी थी। आज से लगभग एक हज़ार वर्ष पहले के अपभ्रंश भाषा के जो पद और दोहे मिलते हैं, वे इस झुकाव को बहुत स्पष्टता के साथ प्रमाणित करते हैं। भारतीय संस्कृति की जो छाप प्रारंभ की हिंदी भाषा पर प ी है वह इतनी सपष्ट है कि भाषा के अध्ययन से ही हम भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों का अनुमान लगा सकते हैं।" यही भारतीय संस्कृति संविधान निमार्ण के समय, अखिल भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में संविधान निर्माताओं की दृष्टि में सामासिक संस्कृति के रूप में प्रकट हुई।

यह कहना समीचीन लगता है कि सामासिक संस्कृति (कॉम्पोजिट कल्चर) शब्द भारतीय संविधान की देन है। अन्य कई संकल्पनाओं की भाँति 'संस्कृति' की भारतीय संकल्पना पाश्चात्य संकल्पना से मेल नहीं खाती। दुर्भाग्य से हममें से कई अब भी अज्ञानवश अपनी प्राचीन भारतीय सोच, चिंतनधारा व परंपराओं को दकियानूसी समझते हैं और पाश्चात्य विचारधारा को वरेण्य मानते हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से भारत को, भारतीयता को और भव्य भारतीय परंपराओं को देखने व समझने का जो सिलसिला चल प ा है, उसके चलते हम न खुद अपना सही चित्र समझ पाते हैं और न दूसरों को समझा पाते हैं। हम कुछ नये पाश्चात्य संकल्पनाओं को लिए, उनके तहत अपने को देखने लगे। राष्ट्र (नेशन) और राष्ट्रीयता (नेशनैलिटी) शब्दों को ही लें। ये पाश्चात्य संकल्पना को द्योतित करने वाले शब्द हैं। पाश्चात्यों के भारत आगमन के पहले हमारे यहाँ भारत के लिए राष्ट्र शब्द प्रयुक्त

नहीं होता था। अब हम कहते हैं कि भारत एक राष्ट्र है। भारत एक इकाई है। पाश्चात्य देशों में राष्ट्र (नेशन) और राष्ट्रीयता की जो संकल्पनाएँ हैं, वे भारतीय चिंतन से मेल इसलिए नहीं खातीं क्योंकि वहाँ राष्ट्र का अर्थ लिया जाता है, इकहरी/एक आयामी (मोनोलिथिक), एक जातीय (मोनोएथेनिक) और एक भाषिक (मोनोलिंगुअल) समुदाय से। लेकिन भारत जो राष्ट्र है वह अनेक जातियों, भाषाओ, धर्मों व आचार-विचारों की सहभागिता से युक्त एक बृहद संगठन (ग्रेट कम्यूनियन) है। हमारे यहाँ बहुत जाति, बहु भाषा-भाषी समाज के रहने व बहु प्रशासनिक तंत्रों के आधीन रहने पर भी सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से हम एक इकाई रहे हैं। इसलिए इन में एकता है। इस एकता में अनेकता है। पाश्चात्यों ने जो प्रचारित किया 'अनेकता में एकता है।' यह गलत धारणा है। वास्तव में भारत में एकता में अनेकता है। इटली, स्पेन, फ्रांस या ग्रेट ब्रिटेन कहने से जिस प्रकार से एक भाषिक व समरूपी या सजातीय समाज का बोध होता है इस प्रकार का बोध भारत कहने से नहीं होता। इसी प्रकार एक राजनीतिक इकाई का भी बोध पहले हमारे यहाँ नहीं होता था। भारत को यूरोप और अफ्रीका की भाँति एक भौगोलिक इकाई मान सकते हैं। भारत शब्द भौगोलिक व राजनीतिक संकल्पना से संबंधित है। अँग्रेजों से पहले जिन्होंने यहाँ राज किया, उन सब का भारतीय कारण होता रहा। 'भारत एक पवित्र भूमि है, पुण्य भूमि है, जन्म भूमि है (मातृभूमि शब्द भारत का नहीं मदरलैंड का अनुवाद है) भारत में सांस्कृतिक एकता है' ये हमारी पौराणिक संकल्पनाएँ हैं।

पाश्चात्य देशों में राष्ट्र के लिए बहु-भाषिकता (मल्टी-लिंगुअलिज़्म) अभिशाप है। वहाँ प्रत्येक भाषा-समाज अपने में स्वतंत्र है, एक-दूसरे से अलग-अलग। पाश्चात्य दृषिटकोण से भारत एक बहु-भाषिक समाज (मल्टी-लिंगुअल सोसायटी) है लेकिन यहाँ भाषाओं का पहले से ही परस्पर समामेलन (म्यूचुअल एमल्गमेशन) होता रहा है और साथ ही भाषाई संस्कृतियों का अभिसरण (कनवरजेन्स) होता रहा। अतः भारत का समाज उस प्रकार का बहुभाषा भाषी समाज नहीं है जिस की संकल्पना मल्टी-लिंगुअलिज़्म में है। भारत की जो बहुभाषिकता है वह हमारे लिए वरदान है न कि अभिशाप जैसे पाश्चात्य देशों के लिए है। पाश्चात्य देशों में भाषिक स्थिति स्थिरक (स्टैटिक) होती है, जब कि हमारे यहाँ की भाषिक स्थिति प्रवाही (फ्लूइड) है। अतः हमारा समाज भाषाई बहुलता वाला समाज (प्लूरोलिंगुअल सोसायटी) है। इसे बहु रंगीन भाषा समाज कह सकते हैं। इसी प्रकार हमारी संस्कृति बहु रंगीन है और हम प्लूरोकल्चरल सोसायटी (बहु रंगीन या बहुल संस्कृति वाला समाज) हैं। इसी को दृष्टि में रख कर संविधान निर्माताओं ने भारत की संस्कृति को सामासिक (कॉम्पोजिट) कहा है।

हमारे यहाँ जो भिन्न-भिन्न भाषायी समाज हैं उनकी अपनी अलग पहचान बनी हुई है। उनकी अपनी संस्कृति का वैशिष्ट्य बरकरार है। भारतीय संस्कृति एकाश्म या एक आयामी नहीं है। अखिल भारतीय संस्कृति या सार्वदेशिक संस्कृति (पैन इंडियन कल्चर) कहने से किसी एक विशिष्ट जाति, इलाके या फिर किसी भाषायी समाज की संस्कृति का बोध न हो कर सभी जाति, सभी प्रादेशिक या सभी राज्यों व इलाकों एवं सभी भाषिक समाजों की समन्वित या सामासिक या सामामिलित (एमल्गमेटेड) संस्कृति का बोध होता है। हमारे यहाँ सांस्कृतिक दृष्टि से अखिल भारतीयता कायम थी। राजनीतिक एकता या राजनीतिक-राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद हमारे यहाँ नहीं थे। राजनीतिक राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद वास्तव में अँग्रेजों की देन है। यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि अँग्रेजों की हुकूमत के ख़िलाफ़ ल ने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के समय अखिल भारतीय राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता (पाश्चात्य दृष्टिकोण से संबंधित) का जन्म हुआ। इस अखिल भारतीय राष्ट्रीयता से प्रादेशिक या क्षेत्रगत अस्मिता या भाषिक अस्मिता दूसरे शब्दों में प्रादेशिक संस्कृति या उपसंस्कृति खत्म नहीं हुई। प्रादेशिक व भाषिक विशिष्टताएँ कुछ हद तक साहित्यिक विशिष्टताओं से संबंधित निजी व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए भी हमारी अखिल भारतीय राष्ट्रीयता व संस्कृति काम करती रही है। क्षेत्रगत अस्मिता या क्षेत्रीय राष्ट्रीयता अथवा उप-संस्कृति अखिल भारतीय राष्ट्रीयता या संस्कृति का एक अविभाज्य अंग के रूप में काम करती रही है। कभी क्षेत्रीय राष्ट्रीयता अथवा संस्कृति अखिल भारतीय राष्ट्रीयता अथवा संस्कृति में आ` नहीं आयी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उस के समानांतर में कई क्षेत्रीय व प्रादेशिक आंदोलन भी चलते रहे। लेकिन ये विघटनकारी तत्वों के रूप में नहीं, प्रत्युत राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय संस्कृति को संपोषित करते हुए। साहित्य में भी एक ओर राष्ट्रीय काव्यधारा के तहत हर भाषा में देशभक्ति की प्रेरणा दी जाती रही तो दूसरी ओर प्रादेशिक व भाषिक अस्मिता का भी गौरव गान होता रहा है।

स्वतंत्रता के बाद संविधान के निर्देशों के अनुसार भले ही हिंदी सम्पूर्ण रूप से राजभाषा नहीं बन पायी हो, लेकिन उसकी सार्वदेशिक-संपर्क-स्थिति में कोई आँच नहीं आयी, अपितु उसने सुदूर अपरिचित अँचलों तक पहुँच कर अपनी अनिवार्यता व अपरिहार्यता को प्रमाणित किया। हिंदी क्षेत्र के बाहर के इलाकों में साहित्य की सभी विधाओं में अब हिंदी में साहित्य रचा जा रहा है एवं ब ी मात्रा में दूसरी भाषाओं से साहित्य का अनुवाद हो रहा है, जिसके माध्यम से हिंदी भाषा की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम बनती जा रही है। यह हिंदी संस्कृति का अखिल भारतीय स्वरूप है। उसकी सामासिक संस्कृति का आयाम है जिसका निर्देश संविधान के अनुच्छेद ३५१ में विनिर्दिष्ट है।

पलकों पे सजा लेंगे सुहाना सपना

एलिज़ाबेथ कुरियन 'मोना'

पलकों पे सजा लेंगे सुहाना सपना
बन जायेगा जीने का सहारा सपना

आकाश पे चमका जो सितारा कोई
जुगनू था वो, जिसका हुआ सच्चा सपना

उम्मीद से ढूँढ़ूँ मैं निग़ाहों में तेरी
मिल जाये मुझे काश वो खोया सपना

मंज़ूरे ख़ुदा हो तो मिले वो भी हमें
सपने में भी देखा न हो जिसका सपना

सच है कि भरम है, ये बताये कोई
सूफ़ी का है कहना के है दुनिया सपना

परदेस में बसते हैं वो, इस देस में हम
दीदार भी उनका है अधूरा सपना

काग़ज़ है जो दिल का, तो ख़यालों का क़लम
तस्वीर का हो चाहे ग़ज़ल का सपना

मिटता ही नहीं अक्स वो नज़रों से कभी
आईना हो टूटा कि हो बिखरा सपना

उस शख़्स की तक़दीर है कितनी खोटी
जिस ने कभी देखा न हो 'मोना' सपना

पीढ़ियों की दूरी

डॉ. इन्द्रा भटनागर

समय की परिवर्तित धारा के अनुसार पीढ़ियों के जीवन-मूल्यों में आता सतत् अंतर प्रकृति का अटल नियम है। नयी पीढ़ी अपनी नयी मान्यताओं, नयी धाराओं, नया विश्वास, नयी आस्था, जीवन जीने की नयी शैली तथा आधुनिकता का लबादा ओढ़कर आती है। वह पूर्व अनुभव और मान्यताओं को नकारते हुए अपनी मान्यताओं के आधार पर जीना चाहती है। गति के साथ सामन्जस्य करके जीना ही गत पीढ़ी की नियति है। अंजलि को आश्चर्य था कि वह इतने ब े सत्य को कैसे भूल गई थी।

उसकी बहू ऋृचा सोनू के साथ दूसरी 'डिलवरी' के लिये अपने मायके गई थी गौरव उसके विरुद्ध था। दोनों की टकराहट देख कर उसने ही गौरव को समझाया था कि पत्नी के विचारों से सामंजस्य रखना ही सुखी गृहस्थी का केन्द्र-बिन्दु है। मोनू के होने के बाद गौरव तथा वह दोनों ऋृचा के पास गये थे। वहाँ से आने के बाद अंजलि ने देखा था कि सदैव खुशी से चहकते रहने वाले गौरव के चेहरे पर एक उदासी की छाया घिर आई थी।

अंजलि ने सोचा ऋृचा और सोनू को गये ढाई महीने से ऊपर हो गया है। जब उसे इतना सूनापन लग रहा है तो स्वाभाविक है कि गौरव भी उदास होगा। गौरव खाना खा रहा था, उसने उसे उदास देख कर कहा, 'गौरव ऋृचा और सोनू को गये ढाई महीने हो गये, तू दो-चार दिन का अवकाश ले कर उन्हें लेने चला जा।' गौरव हाँ, हूँ, करता ऑफिस चला गया। अंजलि अपनी फर्म 'अजंलि इंटीरियर डेकोरेशन' जाने की तैयारी कर रही थी तभी गौरव का फोन आया, 'मम्मी मैं ऑफिस की अलमारी की चाबी कमरे में ही भूल आया हूँ। चपरासी भेज रहा हूँ, ढूँढ कर उसे दे देना।'

अंजलि चाबी खोजने गौरव के कमरे में गई तो कमरे में फैली अव्यवस्था देख कर चकित रह गई। गौरव का बचपन से ही व्यवस्थित रहने का स्वाभाव था। उसके कमरे की मेज़, पलंग सदैव स्वच्छ तथा व्यवस्थित रहते थे। पुस्तकें, जूते, कप े, कंघा, ब्रश सभी नियत स्थान पर रखे रहते थे। व्यवस्था को लेकर ऋृचा से भी उसका झग ा हो जाता था। फर्श पर उसे काग़ज़ का टुक ा क्या रेत भी सहन नहीं होती थी। परन्तु उस समय फर्श पर कई पत्र और लिफाफे तु े-मु े प े थे। कल का आया तु ा-मु ा पत्र मेज़ पर प ा था। मेज़ पर रखी चाबी उठाते हुए उसकी दृष्टि तु े-मु े काग़ज़ की आधी पंक्ति पर अटक गई, 'मैं नहीं आऊँगी जब तक....' अंजलि के मस्तिष्क में जैसे तूफान उठ आया। सोचने लगी ऋृचा ने ऐसा क्यों लिखा? कब तक? आख़िर कब तक वह नहीं आयेगी? कुछ क्षण वह पत्र को हाथ में लिए बैठी रही। किसी का पत्र पढ़ना अनुचित है परन्तु इस समय 'जब तक' का उत्तर जानना आवश्यक था। उसने निश्चय किया कि वह पूरा पत्र नहीं पढ़ेगी परन्तु पूर्ण वाक्य को अवश्य पढ़ेगी। ऋृचा ने लिखा था, 'मैं नहीं आऊँगी जब तक मुझे मेरी मान्यताओं के अनुसार जीने का अधिकार नहीं मिलेगा। तुम नया घर ले लो....' इससे अधिक पढ़ने की उसे आवश्यकता नहीं थी। गौरव की उदासी का रहस्य खुल गया था। तभी चपरासी ने घण्टी बजाई तो वह चौंक कर उठी। चपरासी को चाबी दी। पत्र पढ़ कर उसका मन हुआ वह ऑफिस न जाये। बैठ कर कुछ सोचे परन्तु उसे उस दिन साढ़े-दस तक ऑफिस पहुँचना आवश्यक था। उसे इंटीरियर डकोरेशन के एक ऑर्डर पर साइन करने थे। वह उस ऑर्डर को छो नहीं सकती थी।

ऑफिस में वह बहुत व्यस्त रही। चार बजे जब अपने केबिन में आ कर बैठी, तो पत्र की पंक्तियाँ उसके स्मृति-पटल पर बार-बार टकराने लगीं। वह अपने जीवन के बीते मो से इस मो तक के जीवन का विश्लेषण करने लगी। पीढ़ियों के विचारों और मान्यताओं में आते परिवर्तन को वह कैसे भूल गई थी?

उसके जीवन के आरम्भिक मो पर एक पीढ़ी थी अम्माँ जी की, दूसरी पीढ़ी वह स्वयं थी, तीसरी पीढ़ी थी गरिमा-वीरेश, गौरव और ऋृचा की, और उसके आगे भविष्य की एक नई पीढ़ी जन्म ले रही थी। सभी पीढ़ियों में खंडित होते जीवन-मूल्य और नव-निर्मित जीवन-मूल्यों का संघर्ष और निरन्तरता स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। विघटन और निर्माण की यह प्रक्रिया ही तो चिरन्तन सत्य है।

उसके पिता गेजेटेड ऑफिसर थे। घर का रहन-सहन आधुनिक था। उससे ब े दो भाई थे। बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही उसके पिता को उसकी शादी की चिन्ता हुई। अखिलेश नया-नया आई.ए.एस. ऑफिसर बना था। ग्रीष्मावकाश में ही उसका उससे विवाह हो गया। वह नवीन मान्यताओं, स्वप्न तथा आधुनिक परिवेश की कल्पना लिए ससुराल में आई थी। यहाँ का रहन-सहन सभी पुरातन मान्यताओं के अनुसार था। अम्माँ जी के जीवन-मूल्यों की पुरातनता से परिवर्तित जीवन-मूल्यों का संघर्ष होना स्वाभाविक था।

अम्माँ जी का रसोई-घर जैसे उनक साधना-गृह था। उन्हें स्वच्छता तथा पवित्रता का ध्यान आवश्यकता से अधिक था। एक-एक बर्तन चमकता था। उसे याद आया एक दिन मेहरी के न आने पर उसने बर्तन माँजे थे। अम्माँ जी ने बाद में आकर एक-एक बर्तन को कप े से पोंछ कर रखा था। खाना रसोई में चौकी पर थाली रख कर, आसन पर बैठ कर होता था। ड्राइंग-रूम में गद्दा तथा गाव-तकिये थे, जिनकी चादरें सप्ताह में दो बार बदली जाती थीं।

उसे अखिलेश के साथ पार्टियों में जाना प ता था तो अम्माँ जी को उसका सिर खोल कर बाहर जाना तथा उल्टे पल्लू की सा ी पहनना बहुत बुरा लगता था। वे इसे अँग्रेजी पढ़ाई का अभिशाप समझती थीं। उनके क्रोध से बचने के लिए तथा उनके मन को चोट न लगे इसलिए घर से सिर ढक कर, सीधे पल्ले की सा ी पहन कर ही बाहर निकलती थी। प्रयत्न करने पर भी नवीन और पुरातन शैली का टकराव रोका नहीं जा सकता शायद। अखिलेश के मित्रों के यहाँ अनेक बार पार्टियों पर गये पर उन्हें पुरातन ढंग से भोजन कराने तथा ड्राइंग-रूम में बैठाने में संकोच होता था। इस कारण कभी निमंत्रित नहीं किया, परन्तु कब तक टालते? जब टालना कठिन हो गया तो एक दिन अखिलेश तथा वह डायनिंग-सेट ताथ सोफा-सेट ले कर आये। अम्माँ जी की जीवन-पद्धति पर यह एक क ा प्रहार था। विरोध और दुख के कारण उन्होंने खाना भी नहीं खाया। बहुत मनाने के बाद भी जब अम्माँ जी ने दूसरे दिन भी खाना नहीं खाया तो अखिलेश ने भी खाने का थाल मेज़ पर से हटा दिया कि वे भी खाना नहीं खायेंगे, और ऑफिस चले गये। अखिलेश का यह सबसे ब ा हथियार था जिसके सामने अम्माँ जी का ममत्व उन्हें पराजित कर देता था। अम्माँ जी ने खाना तो खा लिया परन्तु उन्होंने हमारे और बच्चों के साथ कभी मेज़ पर खाना नहीं खाया।

गौरव की प्रथम वर्षगाँठ की याद करके अंजलि के ओठों पर अचानक ही मुस्कुराहट आ गई। अम्माँ जी चाहती थीं उस अवसर पर हवन हो, बच्चे का तुलादान हो तथा ब्राह्मण भोज हो। यह आयोजन उनकी इच्छानुसार ही किया गया। परन्तु संध्या को अखिलेश के मित्रों तथा सम्बन्धियों के भोजन की व्यवस्था आधुनिक पद्धति से की गई। सबके स्वागत के लिए सिर खोले, उल्टे पल्ले की सा ी में अखिलेश के साथ वह भी ख ी हुई थी। अम्माँ जी को बहुत बुरा लगा था। उन्होंने इस सब 'बेशर्मी', परम्परा उल्लंघन तथा घर की इज़्ज़त को नष्ट करने वाले व्यवहार के लिए उसकी अँग्रेजी शिक्षा को जी भर कर कोसा था। उनके आरोपों को सुन कर वह रो प ी थी। उस समय अखिलेश ने उसे सांत्वना देते हुए चुप कराया था। बातों के विष को पचा तो गई थी परन्तु कितने ही दिन तक उसका मन कसैला रहा था।

अम्माँ जी का प्यार गरिमा से अीधक गौरव के प्रति था। वे गरिमा को दूसरे की अमानत तथा गौरव को वंश का दीपक समझती थीं। अम्माँ जी के इस व्यवहार से अनेक बार गरिमा खीज उठती थी परन्तु वह उसे समझा-बुझा कर शांत कर देती थी। हाईस्कूल के पश्चात् गरिमा की इच्छा विज्ञान लेने की थी। विज्ञान के लिए ल कियों का पृथक महाविद्यालय न होने के कारण गरिमा को ल कों के महाविद्यालय में प्रवेश दिलाना प ा। अम्माँ जी इसके विरुद्ध थीं। उनकी मान्यता थी कि ल कियों को घर का काम-काज सिखा कर उनका विवाह कर देना चाहिये। अधिक पढ़-लिख कर वे घर में सामंजस्य नहीं कर पातीं। फिर उन्हें कोई नौकरी तो करनी नहीं।

गौरव और गरिमा ब े हो गये तो उसने इंटीरियर डेकोरेशन का कोर्स कर लिया। जीवन अपनी गति से चल रहा था कि भयानक वज्रपात हुआ। ऑफिस से आते हुए अखिलेश की कार का एक ट्रक के साथ एक्सीडेन्ट हो गया। उसके चारों ओर निराशा का अंधकार छा गया। स्वजनों ने इस कठिनाई के समय आँखें फेर लीं। उसे बी.ए. पास किये लम्बा समय बीत गया था। गरिमा और गौरव की पढ़ाई-लिखाई, शादी, घर के खर्च की समस्या उसके आगे भयावह रूप से ख ी थी। तब उसने

इंटीरियर डेकोरेशन को ही अपनी जीविका का साधन बनाया। कुछ प्रोविडेन्ट फंड के पैसे, कुछ अपने जेवरों को बेच कर प्राप्त रुपयों से तथा कुछ आर.एफ.सी. से ऋण लेकर उसने 'अंजलि इंटीरियर डेकोरेशन' फर्म की स्थापना की। कठिन परिश्रम के फलस्वरूप धीरे-धीरे उसकी फर्म की साख जमती गई। बाहर से भी ऑर्डर आने लगे। फर्म जितनी उन्नति करती गई वह उतनी ही व्यस्त होती गई।

उसकी फर्म की स्थापना तथा अखिलेश की मृत्यु का अम्माँ जी को गहरा सदमा लगा। अखिलेश की मृत्यु के छः महीने बाद ही उनका देहान्त हो गया। उसके जीवन का एक मो समाप्त हो गया था जहाँ पुरातन और नवीन पीढ़ियों के जीवन-मूल्यों का संघर्ष और पुरातन के स्थान पर नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना हुई थी। परन्तु उसे लगता था कहीं वह पुरानी स्थापनाओं से भी जु ी थी। उसके मुख से गहरी श्वास निकली।

गरिमा तथा गौरव का विवाह कर वह निश्चिन्त हो गई थी। वह सोचती थी कि अपनी मान्यताओं तथा नयी पीढ़ियों की मान्यताओं में किसी प्रकार के संघर्ष की स्थिति नहीं आने देगी। परिवर्तित मान्यताओं के साथ सामंजस्य रखेगी। उनसे विद्रोह नहीं करेगी। परन्तु उसके अनजाने ही कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में टकराहट अवश्य आ जाती थी।

उसे याद आया ऋचा अपने शयन-कक्ष के लिए चौखाने पर बने फूलों का पर्दा लेकर आई थी। उसने देखते ही कहा था, 'तुम्हारे शयन-कक्ष से जु े ब े कमरे के लिए तो ये पर्दे उपयुक्त हैं परन्तु इन पर्दों से तुम्हारा शयन-कक्ष और भी छोटा लगेगा।'

गौरव अपने विनोदी स्वाभाव के अनुसार ताली बजा कर बोला, 'हियर लाइज़ द प्वाइंट, आख़िर मम्मी इंटीरियर डेकोरेशन फर्म की मालकिन हैं।'

सहसा उसे अपनी गलती का आभास हुआ। ऋचा अपने शयन-कक्ष को अपनी रुचि के अनुसार सजाने को स्वतंत्र है। यह वाक्य वास्तव में उसमें छिपे इंटीरियर डेकोरेशन के रूप की असामयिक तथा अनुचित कॉमेन्ट थी। उसे पश्चाताप हुआ परन्तु तीर के चलने के बाद उस पर अपना अधिकार नहीं रहता।

मोनू के समय ऋचा को सारे दिन लेटे रहते देख कर उसने गौरव से कहा था कि वह संध्या को कम से कम एक घण्टा ऋचा को घुमाने ले जाये। ऋचा की चटपटी चाट मसालेदार चीज़ों को खाने की इच्छा को पूर्ण करने के स्थान पर वे उसे फल, दूध, सलाद तथा पौष्टिक आहार देती थीं। डिलीवरी से पूर्व ऋचा की माँ पाँच किलो घी, मेवा आदि देकर गई थीं परन्तु उसने उचित मात्रा में ही उसे घी और मेवा खिलाये थे। वे नहीं चाहती थीं कि डिलीवरी के बाद ऋचा की 'फिगर' बिग े। वह सोचती रही कि वह अम्माँ जी के समान मेवा, घी अधिक मात्रा में न देकर पुरातन मान्यता का खंडन करके नवीन आधुनिक मान्यता का पालन कर रही है। मोनू जब सवा महीने का था तब ऋचा की माँ आई थीं। उसने सुना वे ऋचा से कह रही थीं, 'अरी ऋचा बच्चे के बाद तो माँ का शरीर पुष्ट होता है। तेरे शरीर पर तो रत्ती भर भी माँस नहीं चढ़ा। घी और मेवे तो मैंने दिये थे, फिर भी तेरी सास से खिलाये नहीं गये।' उसे बुरा तो बहुत लगा परन्तु घर आये मेहमान से वह कुछ कह नहीं सकती थी इसी कारण मौन रह गई।

ऋचा की इच्छा दूसरी डिलीवरी मायके में कराने की थी तो उसने कोई बाधा नहीं डाली। गौरव इसके विरुद्ध था। दोनों की टकराहट देख कर उसने गौरव को ही समझाया था कि सुखी दाम्पत्य जीवन का केन्द्र-बिन्दु परस्पर सामंजस्य है। मोनू के होने के बाद जब वे ऋचा के मायके पहुँची थीं तब ऋचा की माँ ने ब े गर्व से कहा था, 'देखो ऋचा कितनी स्वस्थ हो गई है।' ऋचा की फिगर देख कर उसे खिन्नता ही हुई थी परन्तु उसने कुछ कहा नहीं।

आज ऋचा के पत्र की उन पंक्तियों ने उसे कुछ सोचने को विवश किया था। वह सोच रही थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार जीने का अधिकार है। नवीन पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से कुछ सीखना नहीं चाहती तो उसे अपने अनुभव की क वी कुनैन पिलानी गलत है। गुणकारी होने पर भी वह स्वाद में तो क वी ही होगी।

घ ी की ओर उसकी दृष्टि गई। साढ़े-पाँच हो चुके थे। कुछ निश्चय करके वह उठी। अपने सहायकों को निर्देश देकर वह डायरेक्टर विपिन चटर्जी के घर पहुँची। विपिन चटर्जी चार-पाँच मास पूर्व ही जिस फर्म में गौरव काम करता था, स्थानांतरित हो कर आये थे। विपिन चटर्जी अंजलि के भाई के मित्रों में से थे तथा उसका दीदी के समान सम्मान करते थे।

अंजलि को देख कर वह खुश होते हुए बोले, 'अरे दीदी आप !'

'आज किसी कार्यवश ही यहाँ आई हूँ विपिन।'

'मुझे फोन कर देतीं, मैं स्वयं उपस्थित हो जाता।'

'विपिन, मैं चाहती हूँ कि तुम गौरव का स्थानांतरण कर दो।'

विपिन ने उनकी ओर आश्चर्य से देखा। 'क्या कह रही हो दीदी? गौरव आपका एकमात्र पुत्र है, और जहाँ तक मैं समझता हूँ गौरव आपको बहुत प्यार और आपका सम्मान करता है। आप स्वयं भी बहुत सुलझे विचारों की हैं। मैं आपके निर्णय का औचित्य नहीं समझ पाया।'

'मैंने सही समय पर उचित निर्णय लिया है विपिन। नयी पीढ़ी सोचती है कि पुरानी पीढ़ी के सामने उसके अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। उस पीढ़ी के विधि और निषेध स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता से अपनी इच्छानुसार जीने के मार्ग में बाधा डालते हैं। वह पुरानी पीढ़ी से अधिक बुद्धिमान, समझदार तथा आधुनिक है। यह सही है कि गौरव मुझे बहुत प्यार करता है, मेरा बहुत सम्मान करता है और इसीलिए मैं नहीं चाहती कि माँ और पत्नी के मध्य उसका व्यक्तित्व खंडित हो। मेरे कारण गौरव और ऋचा के सम्बन्धों में किसी प्रकार की दरार उत्पन्न हो। एक बार दरार प ने के बाद सारा जीवन-रस उसमें से रिस जाता है।'

दूसरे दिन जब गौरव ऑफिस से आया तो उदास था। वह चाय का प्याला पक ते हुए बोला, 'मम्मी मेरा स्थानांतरण अलवर हो गया है। एक सप्ताह बाद ही मुझे ज्वाइन करना है। ऑफिस के पास ही बँगले की व्यवस्था है।'

अंजलि ने सहज भाव से कहा, 'गवर्नमेण्ट सर्विस में स्थानांतरण तो होता ही रहता है। एक सप्ताह में ही ज्वाइन करना है तो तू अब ऋचा, सोनू और मोनू को जल्दी ले आ।'

गौरव उसी दिन उन्हें लेने चला गया।

ऋचा ने जब उससे पूछा कि वह अलवर क्या-क्या सामान ले जाये तो उसने अपना कुछ भी सुझाव न देते हुए कहा, 'ऋचा, यह सब कुछ आज भी तुम्हारा है और कल भी। तुम्हें जो भी उचित और रुचिकर लगे वह सामान ले जाओ।'

ऋचा उसके चरण-स्पर्श कर बच्चों के साथ ट्रेन में बैठ चुकी थी। गौरव उसके चरण-स्पर्श करते हुए बोला, 'मम्मी ! सच बताना, यह स्थानांतरण आप ने ही करवाया था?'

अंजलि ने कहा 'हाँ गौरव, मैंने ही करवाया था क्योंकि तुम्हें अब माँ के आँचल के छाया की नहीं, जिस जीवन-संगिनी के साथ तुम्हें शेष सफर करना है उसके साथ सामंजस्य की आवश्यकता है। तुम्हारा जीवन सुखमय हो।'

तभी ट्रेन की सीटी सुन कर गौरव अश्रुपूरित नेत्रों से ट्रेन में चढ़ गया। अंजलि ने गहरी साँस ली। उसे लगा पुरानी पीढ़ी कितनी भी नयी पीढ़ी से सामंजस्य करे, परन्तु वह समानांतर ही रहेगी।

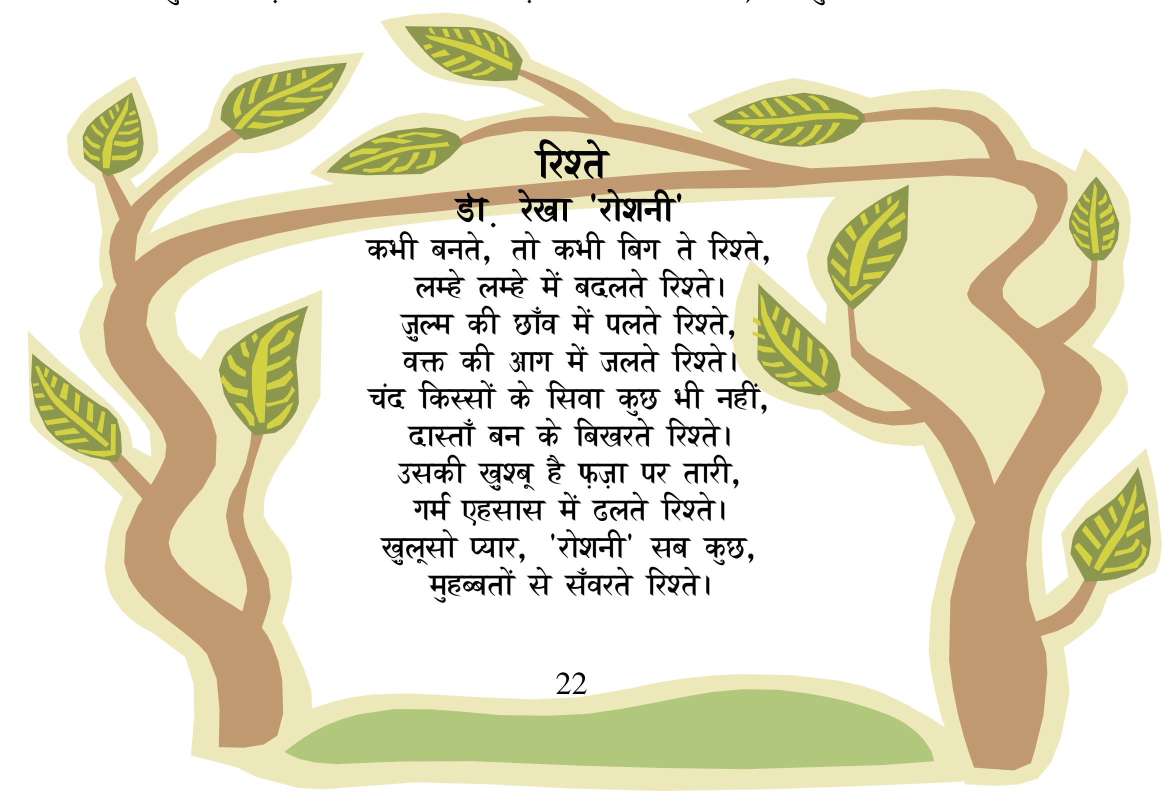

रिश्ते

डॉ. रेखा 'रोशनी'

कभी बनते, तो कभी बिग ते रिश्ते,
लम्हे लम्हे में बदलते रिश्ते।
जुल्म की छाँव में पलते रिश्ते,
वक्त की आग में जलते रिश्ते।
चंद किस्सों के सिवा कुछ भी नहीं,
दास्ताँ बन के बिखरते रिश्ते।
उसकी खुश्बू है फ़ज़ा पर तारी,
गर्म एहसास में ढलते रिश्ते।
खुलूसो प्यार, 'रोशनी' सब कुछ,
मुहब्बतों से सँवरते रिश्ते।

फ़साद की ज

मधुप शर्मा

आँखें मसलता हुआ जुम्मन मौलवी जी के घर पहुँचा और चाबी लेकर मस्जिद की तरफ़ चल प ा। मस्जिद सामने ही थी दस कदम पर, पर जुम्मन को लग रहा था जैसे पहा लाँघना प रहा है। सोच रहा था यह सूरज भी कम्बख़्त कितनी जल्दी चढ़ने लगा है, नींद भी पूरी नहीं होने देता। उसने कमीज़ की जेब से बी ी का बंडल निकाला और एक बी ी मुँह में लगा ली। माचिस के लिए दूसरी जेब टटोली, तो माचिस नदारद। उसे याद आया कि माचिस तो वो बिस्तर के सिरहाने ही छो आया है। राह चलते से उसने माचिस माँगी और बी ी सुलगा कर, मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठ कर कश लेने लगा। चार-छः कश ही खींचे थे कि बी ी फुस्स। उसे फिर ब ी झुँझलाहट आई, इतनी घटिया बी ी बनाने वालों पर, और मन ही मन उसने इरादा कर लिया कि अब इस मार्के की बी ी वह कभी नहीं खरीदेगा। उठ कर उसने एक-दो अँग ाइयाँ तो ीं और ताला खोल कर सहन में पहुँचा, तो कोने में प ा झा ू उठाने से पहले फिर उसके मन में आया, कम्बख़्त यह इतना लम्बा-चौ ा सहन, पता नहीं क्यों बनाया किसी ने। झा ू लगाते-लगाते कमर कमान हो जाती है। और आठ-दस से ज़्यादा नमाज़ी कभी नहीं आये इस मस्जिद में।

सहन में झा ू हो चुका तो चटाइयाँ निकालने के लिए उसने अंदर के कमरे का ताला खोला। बिजली का बटन दबाया, तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो पाया। उसे लगा कि शायद अभी तक वह ख़्वाब देख रहा है। उसने फिर अपनी आँखों को जोर-ज़ोर से मसला। चटाइयाँ इधर-उधर बिखरी प ी थीं और ज़्यादातर फटी हुईं, टुक े-टुक े। कुरान शरीफ़ के वर्क़ भी सारे कमरे में बिखरे थे, फटे हुए। इतना ही नहीं, दो-चार जगह गंदगी भी प ी हुई थी। जुम्मन के तो होश फाख़्ता हो गये। उल्टे पाँव भागा और हाँफता-काँपता मौलवी साहब के घर पहुँचा, तो मौलवी साहब कंधे पर तौलिया डाले, गुसल के लिए जा रहे थे। जुम्मन को दौ कर आता हुआ देख कर रुके, और बोले, 'क्या हुआ?'

जुम्मन की साँस फूली हुई थी, मुश्किल से कह पाया, 'हो गई. . ., हो गई. . . .'

'अबे क्या हो गई? कुछ बकेगा भी?'

'सच हो गई. . . .अफ़वाह सच हो गई. . . .'

'अबे फिर वही' तू घबराया हुआ क्यूँ है? कैसी अफ़वाह?'

'किसी ने. . . .किसी ने मस्जिद को नापाक कर दिया, कुरान शरीफ़ को नापाक कर दिया।'

मौलवी साहब कुछ समझे, कुछ नहीं समझे। मस्जिद की तरफ़ लपके। जुम्मन पीछे-पीछे था। पर मौलवी साहब का घरेलू ख़ादिम बशीर, जो उस वक्त नल के नीचे से भरी हुई बाल्टी उठा कर ड्रम में डालने लगा था, बाल्टी को धम्म् से वहीं पटक मुहल्ले की तरफ़ दौ ा। देखते ही देखते घर-घर में यह ख़बर पहुँच गई कि मस्जिद को नापाक किया गया है और कुरान शरीफ़ की तौहीन हुई है। सुनने वालों का ख़ून खौल उठा। चाकू, भाले बर्छियाँ सब बाहर निकल आए। थो ी ही देर में मस्जिद का सहन खचाखच भर गया।

हर आदमी अंदर के कमरे का नज़ारा अपनी आँखों से देखना चाहता था। धक्कम-धक्का होने लगा। लेकिन कुछ बज़ुर्गों ने सलाह दी कि कमरे के अंदर कोई न जाये, कोई किसी चीज़ को न छुये। सुबूत के तौर पर, कमरे के सारे सामान का, जैसे का तैसा रहना ज़रूरी है। यह सलाह मान ली गयी और कमरे को ताला लगा कर चाबी मौलवी साहब को सौंप दी गई।

लेकिन हालात की गर्मी से, भी के दिलों में जो उबाल आ चुका था, वो कैसे थमता। दो-चार बुज़ुर्गों को मस्जिद के सहन में ख ा छो भी गली में बह चली। 'अल्ला हो अकबर', 'बदला लेंगे, चुप न रहेंगे', 'ईंट का जवाब पत्थर से देंगे', वगैरा नारों ने सारे मुहल्ले को गुँजा दिया। भी के रेले से वह सँकरी-सी गली, बरसाती नाले की तरह उफन प ी।

भी की चपेट में सबसे पहले आई एक बुढ़िया, जो राशन की दुकान से राशन ले कर आ रही थी। इससे पहले कि कुछ समझ पाये, वह धक्का खा कर गिरी। कागज़ की थैली में चावल थे।

दाना-दाना बिखर गए। मिट्टी के तेल की पीपी एक नौजवान ने लपक ली। जोश में होश कहाँ। न किसी को उसकी आह सुनाई दी, न कराह। उसके कमज़ोर शरीर को रौंदती हुई भी , आगे बढ़ गई।

कुछ दूर पर एक बच्चा, छः-सात साल का, घर से निकला था स्कूल के लिए। पहले तो तमाशा समझ कर ख ा हो गया, स क के एक किनारे, देखने के लिए। फिर कुछ समझ में आया तो डर गया और भागा स क के दूसरी ओर अपने घर की गली में घुसने के लिए। लेकिन भी की रफ़्तार उसकी रफ़्तार से तेज़ थी। लपेट में आ गया।

कुछ ही देर बाद सुनसान गली में प ी वे दो लाशें, चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थीं कि अभी इधर से उन्माद का तूफ़ान गुज़रा है।

दूसरी गली की नुक्क पर हनुमान जी का एक मंदिर था, छोटा-सा। सबसे पहले हनुमान जी की गदा टूटी, फिर जंघा जख़्मी की गई। गेरू की जगह कोलतार लगाया गया। घंटियाँ पीतल की थीं। उतार ली गईं। फिर भी कुछ कसर नज़र आई तो जाते-जाते कुछ नौजवानों ने, स क से गोबर उठाया और मंदिर की दीवारों पर छि क दिया।

बस फिर क्या था। हनुमान जी के भक्तों को जोश आ गया। शहर में हिंसा का यह दूसरा दौर था। आत्म-सुरक्षा के नाम पर थो ी-बहुत तैयारी सभी ने कर रखी थी। दूसरी गली से भी भी का रेला-सा आया और नुक्क पर थम गया। देखते ही देखते बीच के चौराहे ने एक ब े-से अखा े की शक्ल इख़्तियार कर ली। स क के एक तरफ़ एक गिरोह था, दूसरी तरफ़ दूसरा। कुछ देर तो नारेकशी होती रही, फिर पेट्रोल और मिट्टी के तेल में लिपटे आग के गोलों का आदान-प्रदान हुआ। फिर दोनों तरफ़ के कुछ प्रभावशाली लोगों ने अमन बनाये रखने की अपील की। पर लोगों में जोश ज़्यादा था, समझ कम। इक्का-दुक्का झ पें चलती रहीं और लगभग एक घंटे बाद जब पुलिस की गा ी का सायरन सुन कर भी इधर-उधर भागी, तो चौराहे पर दो लाशें और आठ जख़्मी बाकी बचे थे। एक कार, एक तिपहिया और दो बसें, जिनके ढाँचे अभी तक सुलग रहे थे, सो अलग।

लाशों और जख़्मियों की शनाख़्त हो जायेगी कि हिन्दू थे या मुसलमान। कार और तिपहिये के मालिकों का भी पता लग जायेगा, हिन्दू थे या मुसलमान, लेकिन इन बसों को कौनसे खाते में डालेंगे, जो हिन्दुओं की भी थीं, मुसलमानों की भी, और जो अब न हिन्दुओं की रहीं, न मुसलमानों की।

लेकिन इसी बीच वो तीसरा गिरोह ज़्यादा चुस्त व चालाक निकला। इन दोनों गिरोहों के दंगे की आ में उसने अपना काम ब ी फुर्ती और मुस्तैदी से निपटा लिया और कोई निशान नहीं छो ा। एक कप े की दुकान लूटी, एक जनरल स्टोर और एक जूतों की दुकान भी। जाते-जाते रहे-सहे माल को आग की लपटों के हवाले करते गए, ताकि अपना कोई निशान पीछे न छूटे, और अ ोसी-प ोसी आग बुझाने में व्यस्त रहें। यह गिरोह हमेशा घात लगाये तैयार रहता है। बस मौक़ा आया और फ़ायदा उठाया।

यह तीसरा गिरोह कुछ ब े शहरों में, पिछले कुछ सालों में पैदा हुआ, पनपा और बढ़ा है। इसमें हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी और शायद इक्का-दुक्का कोई और भी। और दरअसल ये न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न कोई और। ये न मंदिर के हिमायती हैं, न मस्जिद के। इनकी जाति है शहरी लुटेरे और कर्म है लूट-खसोट।

पुलिस ने आते ही दो-चार हवाई-फायर किये। रहे-सहे लोग भी घरों में घुस गये। चौबीस घंटे का कर्फ्यू का ऐलान कर दिया गया। जख़्मियों को उठा कर अस्पताल पहुँचाया गया। दोनों लाशों का पंचनामा हुआ और उन्हें भी अस्पताल पहुँचा दिया गया।

उसके बाद दोनों गलियों के मुहानों पर कुछ हथियारबंद सिपाही तैनात कर दिये गये। पुलिस अफसर ने मंदिर का मुआयना किया। उसके बाद जीप पहली गली में घुसी। पुलिस अफसर को आया देख मस्जिद के सहन में ख े कुछ लोग दरवाज़े पर आ गये और मस्जिद और क़ुरान शरीफ़ के नापाक किये जाने की शिकायत उनसे की। उन्हीं के इसरार पर अफसर ने अंदर के कमरे का जायज़ा लिया और कमरे को सील बंद करवा दिया।

भला हो इन आधुनिक प्रचार और प्रसार साधनों का। घंटे भर में तो ख़बर देश के सारे ब े शहरों में पहुँच गई। हिंसा के पहले दौर के बाद पुलिस अभी तक काफी सतर्क थी। तुरंत ही

एहतियाती कदम उठाये गये। ख़ासकर संवेदनशील क्षेत्रों में सुरक्षा क ी कर दी गई। कहीं-कहीं फ़ौजी टुक यॉँ भी तैनात की गईं। लेकिन तीसरे गिरोह के लोगों की सतर्कता के सामने प्रशासन की सतर्कता हमेशा ही मात खा जाती है। हर तरह की मुस्तैदी के बावजूद जगह-जगह दुकानें लूटी गईं, झोप यॉँ जलीं, मंदिर टूटे, मस्जिदें नापाक की गईं। बहुत-सी मासूम जानें गईं। कारों और बसों को जलाया गया और खुले आम वहशीपन का इज़हार किया गया।

राजधानी में राज्यसभा का सत्र चल रहा था। विरोधी पर्टियों को फिर एक मौक़ा मिला, सरकार की खिंचाई करने का। कानून और व्यवस्था की स्थिति पर गहरी चिंता प्रकट की गई। दंगों के मुद्दे को लेकर बहस करवाने की माँग की गई। केन्द्रीय गृहमंत्री और प्रधानमंत्री के इस्तीफों की माँग बार-बार दोहराई गई। सरकार की ढुलमुल नीतियों की क े शब्दों में आलोचना की गई। उसकी अकर्मण्यता पर गहरा शोक प्रकट किया गया। वाक्-युद्ध से काम नहीं चला, तो नौबत हाथापाई तक आ गई। बार-बार कहने पर भी सदस्य शांत नहीं हुए, तो सभापति ने कार्यवाई दोपहर के भोजन तक के लिए स्थगित कर दी। भोजन के बाद हंगामा और भी जोर पक गया तो कार्यवाई दिन भर के लिए स्थगित कर दी गई।

गृहमंत्री ने सारे मुख्य मंत्रियों को क े कदम उठाने की सलाह दी। ज़रूरत हो तो, पुलिस की मदद के लिए फ़ौजी टुक यॉँ और भी भेजी जा सकती हैं, पर दंगे किसी सूरत में भ कने नहीं चाहिये।

प्रधानमंत्री ने मुख्यमंत्री से सम्पर्क किया। वह मस्जिद और कुरान शरीफ़ के नापाक किये जाने की बात सुन कर बहुत क्षुब्ध थे। तुरंत ही एक उच्च-स्तरीय समिति गठन करने को कहा गया, जो इस मामले की तह तक पहुँचे। अपराधियों को पक ने के लिए, सी.बी.आई. की सहायता लेने की भी सलाह दी गई।

मुख्यमंत्री ने भी रत्ती-भर कोताही नहीं बरती। दूसरे ही दिन, एक अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में सात सदस्यों की एक समिति गठित कर दी, जिसमें दो बहुत मशहूर फिल्मी हस्तियाँ, दो और जाने-माने नागरिक तथा दो उसी मोहल्ले में रहने वाले बुज़ुर्ग थे। अल्प-संख्यकों के मन में कही यह न आये कि पक्षपात हुआ है, इसलिए चार सदस्य मुसलमान थे और तीन हिन्दू।

उसी दिन शाम को समिति की पहली अनौपचारिक-सी बैठक भी हो गई, जिसमें एक-दूसरे के परिचय के अलावा, अध्यक्ष महोदय ने मामले का संक्षिप्त-सा ब्यौरा भी बताया। एक मस्जिद है। मस्जिद के चारों तरफ़ मुस्लिम आबादी है। मस्जिद की इमारत किसी तरफ़ से भी किसी और इमारत से सटी हुई नहीं है। बीच में कम से कम आठ-आठ फुट का फ़ासला है। मस्जिद में एक कमरा है, जिसमें एक रोशनदान है और एक दरवाज़ा। कमरे में कुछ चटाइयाँ और कमरे की आलमारी में कुरान शरीफ़ की एक प्रति रखी रहती है। दरवाज़े की चाबी हमेशा मौलवी साहब के पास रहती है। कल सवेरे जब मौलवी साहब के कारिन्दे ने कमरे का दरवाज़ा खोला तो पाया कि कुरान शरीफ़ के वर्क़ फटे प े हैं, जगह-जगह पाखाना प ा है। यह दुष्कर्म किसने किया, क्यूँ किया, किस तरह किया, यह तो अभी कहा नहीं जा सकता, लेकिन इसके जो बुरे नतीज़े निकले हैं, उनसे आप सभी वाक़िफ़ हैं। मामले की तह तक पहुँचने के लिए आप सबके सहयोग और सहायता की अपेक्षा है।

सबसे पहले मौक़ा-ए-वारदात का मुआयना ज़रूरी था इसलिए अगली सुबह सारे सदस्य मस्जिद में पहुँचे। उनके अलावा दरवाज़े को सीलबंद करवाने वाला पुलिस अफ़सर, सदस्यों के सुरक्षाकर्मी, सदस्यों की बातचीत को नोट करने वाले दो स्टेनो-सेक्रेटरी, हाथों-पैरों के संभावित निशानों की खोज करने वाले विशेषज्ञ, उन निशानों को कैमरे में बंद करने वाले विशेष कैमरा-मैन, मौलवी साहब आदि काफी लोग जमा हो गये।

सबसे पहले एक-एक करके सारे सदस्यों ने ताले पर लगी हुई सील का मुआयना किया। जब सबने तसदीक़ कर दी कि सील ठीक-ठाक है और उसके साथ कोई छे -छा नहीं की गई, तब पुलिस अधिकारी ने सील को तो ा। न्यायाधीश महोदय ने आगे बढ़ कर ब ी सावधानी के साथ दरवाज़े के पट खोले। दावाज़ा क्या खुला, कि सारा रहस्य ही खुल कर सामने आ गया। गुनहगार सारे सुबूतों के साथ सामने थे। पाच-छः बंदरों का एक पूरा परिवार कमरे के बीचोंबीच बैठा अमरूदों की दावत उ ा रहा था। इंसानों की दख़लंदाज़ी उन्हें पसंद नहीं आई। उनके मुखिया ने खू...खू...

करके अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की और अपने साथियों को सावधान कर दिया। सबके सब लपक कर आलमारी के ऊपरी खाने में जा बैठे।

पके हुए अमरूदों की खुशबू पर और किसी ने ध्यान दिया हो या नहीं, पर मौलवी साहब की बगल में ख` जुम्मन की नाक में खुशबू पहुँची तो उसके दिल में तीर-सी चुभी। छटपटाता हुआ-सा कमरे के बीचों-बीच पहुँच गया और बोला, 'हाय हाय कमबख़्त सारे के सारे खा गये।'

समिति के सारे सदस्य हैरान थे। मौलवी साहब जुम्मन की हरकत से बिल्कुल ही बेहाल हो गये। दूर से ही चिल्लये, 'अबे क्या खा गए?'

'कच्चे अमरूदों का टोकरा रखा था मैंने, पकने के लिए।'

पुलिस अधिकारी आगे बढ़ा और जुम्मन को बाँह पक कर बाहर ले आया।

बंदरों ने सोचा इंसान की जात का क्या भरोसा। परखों का लिहाज़-शर्म तो इन्हें रह नहीं गया है। और फिर जो खुद ही एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं, उनसे किसी भलाई की आशा रखना बेवकूफ़ी है। अतः यहाँ से खिसक ही जाना बेहतर है।

आलमारी वाली दीवार और पास के रोशनदान वाली दीवार में एक तिकोन-सा बनाती हुई एक बल्ली लगी हुई थी। बल्ली का आलमारी की तरफ़ का छोर कोई चार फुट ऊँचा होगा। बंदरों के मुखिया ने इशारा किया तो सबके सब बल्ली पर जा बैठे। कुरान शरीफ़ के कुछ बचे हुए वर्क़ और दो-चार अमरूद अभी तक आलमारी में प` थे। जाते-जाते उन्हें भी नीचे फेंकना वे भूले नहीं।

कुछ देर बल्ली पर बैठ कर नीचे का नज़ारा देखते रहे। दो-एक ने वहीं बैठ कर अपने पेट हल्के किए। बल्ली का दूसरा छोर रोशनदान से चार-पाँच फुट नीचे था। एक ही छलाँग में सबके सब रोशनदान में पहुँच गए। और खूँ....खूँ....करके मुँह चिढ़ाने लगे।

तभी पुलिस अधिकारी ने न्यायाधीश महोदय से कुछ बात की। न्यायाधीश ने हाँ में सिर हिलाया। बंदर उनकी बात तो क्या समझते, लेकिन इंसान की नीयत और नज़रों को वो अच्छी तरह पहचानते थे। इससे पहले कि पुलिस अधिकारी अपनी पिस्तौल निकालता, सबके सब रफूचक्कर हो गए। बेवकूफ़ थो` ही थे, जो सुबूत के तौर पर अपनी कोई लाश भी छो जाते।

समिति के सारे सदस्यों के मुँह से, लगभग एक साथ निकला 'तो ये थे फ़साद की ज ।'

दे भगवन् तू इतना बल

अनिल मेहता

फैली है चारों ओर
अनीति और अशांति
नज़र आता है सर्वत्र
आतंक और अन्याय।

चलता है हर कोई
अपनी अपनी राह
यहाँ नहीं किसी को
किसी की परवाह।

लुच्चे लफंगों की
होती वाह वाह
सीधे सादे इंसाँ को
मिलती है आह।

बचा नहीं है यहाँ विवेक
बात-बात में है अतिरेक
भ्रष्टाचार है इतना ज़्यादा
न माने यहाँ कोई कायदा

दे भगवन् तू इतना बल, मैं यह सब कुछ डालूँ बदल।

नैतिक मूल्य

महेश राजा

हमारे एक मित्र गिरते हुए नैतिक मूल्यों के प्रति बहुत चिन्तित हैं।

मुझसे कहने लगे, 'आज़ादी के बाद नैतिक मूल्यों में कितनी गिरावट आ गई है ! कल कचहरी गया था। मुझे अपनी ज़मीन की नकल लेनी थी। पटवारी ने कहा कि अभी नक्शा कम्प्यूटर में गया है। वहाँ से आ जायेगा तो मैं आपको नकल बना दूँगा।'

कुछ देर तक रुक कर पटवारी से पूछा, 'कब तक आयेगा?'

पटवारी ने कहा, 'ये सरकारी कम्प्यूटर हैं, इसलिए कितने महीने लगेंगे यह तो मैं भी नहीं बता सकता।'

मित्र बोले, 'मैंने पटवारी से कहा कि मुझे मकान बनवाने के लिए बैंक से कर्ज़ा लेना है.... बिना नक्शे के कर्ज़ नहीं मिलेगा.... इसलिए और कोई रास्ता हो तो बताइये। पटवारी ने रास्ता बता दिया, और मैंने उसे तीन सौ रुपये दे दिये नक्शा बनवाने के लिये।'

कहने का मतलब यही था कि पटवारी स्तर के सरकारी कर्मचारी के नैतिक मूल्य का रेट तीन-सौ रुपये है। इसके बाद और भी राजस्व विभाग में कई अफ़सर हैं, जिनके नैतिक मूल्य गिरे हैं। फिर उन्होंने लगभग सभी सरकारी विभागों में गिरते नैतिक मूल्यों की चर्चा की।

कुछ दिनों बाद मुझे अपने नये निवास में टेलीफोन लगवाना था। मुझे पता चला कि मेरे ही मित्र यह सेक्शन देखते हैं। मैं प्रसन्न हो गया। मैंने उनको आवेदन दिया और कहा कि मकान का गृह-प्रवेश चार दिनों के बाद है, मैं चाहता हूँ कि गृहप्रवेश के साथ टेलीफोन भी लग जायें।

मित्र बोले, 'अभी तो इंस्ट्रूमेंट की सप्लाई नहीं है। आ जायेंगे तो सबसे पहले आपके घर में लग जायेगा।'

मैंने पूछा, 'कितने दिन लगेंगे?'

वह बोले, 'सरकारी काम है.... कितने दिन या महीने लगेंगे, यह तो बताना मुश्किल है।'

मैंने कहा, 'और कोई विकल्प?'

वह बोले, 'ब` साहब से बात करनी प`गी।'

मैंने हँसते हुए पूछा, 'ब` साहब के नैतिक मूल्य किस रेट तक गिरे हैं?'

वह बोले, 'आप हमारे मित्र हैं.... आप से कोई ज़्यादा थो` ही लेंगे।'

ग़ज़ल

शैलजा नरहरि

दास्ताँ इतनी मुख़्तसर क्यूँ है
इतना आसान ये सफ़र क्यूँ है

बन्द होठों ने एक दुआ तो दी
मेरे सीने में इतना डर क्यूँ है

बदसलूकी तेरा शऊर न था
भागा भागा सा अब बशर क्यूँ है

हादिसों में नहीं हूँ मैं शामिल
बदली बदली सी हर नज़र क्यूँ है

जिसके हाथों में घर का नक्शा था
शख़्स वो आज दर-ब-दर क्यूँ है

दफ़्तर में कबूतर

डा. परेश

प्रिय पाठकों ! पिछली बार की आपबीती सुनाने के बाद मुझे जरा भी इल्म नहीं था कि दूसरा हादसा इतनी जल्दी पेश आ जायेगा। लेकिन यदि हम इस रहस्यमयी ज़िन्दगी को, सब कुछ जान लिया है, ऐसा कहने लगे तो, लोग फिर गंभीरता से कभी न लेंगे। आख़िर हम इसे जानते भी कितना हैं। सारी चीज़ों का बन्दोबस्त करने के बाद भी आप देखते हैं कि कहीं से कोई अदृश्य हाथ आकर हमारी जेब इस चतुराई से काट लेता है कि हमें अपने आप को चतुर मानने की ज़िद पर शर्मिन्दगी उठानी प ती है।

मैं नहीं चाहते आप शुरू में ही संजीदा होना शुरू कर दें - इससे तो रस-प्रक्रिया ही उलटी हो जायेगी। लेकिन अपनी ऊपर कही हुई बात को प्रमाणित करने के लिए अभिनेत्री 'शोभा' की बात कलम की नोंक पर उछल-उछल कर आगे-आगे आ रही है। उसे राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता है और जब तक देश इस समाचार को पूरी तरह ग्रहण करता है उससे पहले ही वह आत्महत्या को विवश हो जाती है। बताइये है कुछ आपके वश में। या आप जो कुछ प्रडिक्ट करेंगे - बस इस जीवन का चक्का उसी तरह से घूमने को बाध्य है। नहीं न? तो आ जाइये मेरे साथ-साथ, मेरे दफ्तर में। रहस्य का कोई सिर-पैर तो देखने की कोशिश करें।

मैं जानता हूँ आप में से अनेक उतावले सहृदय यह कहेंगे कि सिर-पैर से काम नहीं चलेगा - हमें तो इस बार पूरी सूरत ही दिखाइये। लीजिये मैं ही गलती कर बैठा। आख़िर बताये बिना नहीं रह सका न कि किस्सा आख़िर यह भी उसी तरह का है। लेकिन क्या करूँ - ऊपर से चाहे मैं आपको कितना भी संयमी नज़र आऊँ - जानते तो आप भी हैं कि आख़िर किस्से आयेंगे और कहाँ से। पाठकों ! इस बार तो मुझे आपसे पूरी मदद चाहिये। पिछली बार तो आपको याद होगा कि वह मूरत खि की के पीछे बैठी हुई थी, इसलिए मैं केवल उसके बाल, नाक, कान, भौं, आँखें इत्यादि ही देख पाया था। लेकिन इस बार तो मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा। आपको पूरा हादसा सुनाना चाहिये। आप तो जानते ही हैं कि रस-निष्पत्ति के लिए व्यभिचारियों-संचारियों की क्यारियों से गुज़रना होता है।

इसे भी आप उसी का करिश्मा समझिये कि आठ-दस वर्ष तक दफ्तरी ज़िन्दगी से टकराने के बाद जब आप उसके अभ्यस्त हो जाते हैं तो उसमें फिर थो ा-थो ा मजा भी आने लगता है। उसी चपरासी, उसी कॉलबेल, टाइप-राइटर, गंदे पर्दे, खुले हुए बिजली के स्विच-बोर्ड, घंटे-घंटे बाद की उन्हीं कभी न धुल सकने वाले गिलासों की चाय इत्यादि चीज़ों से ऐसा समझौता हो जाता है कि लगता है किसी साफ-सुथरी जगह में ट्रांसफर हो गई तो जी न लगेगा। बहरहाल दास्तान दफ्तर की उतनी नहीं है, मूरत अभी भी पिटारी के नीचे छुपी है। किन्तु मेहरबान ! अभी तक पिटारी खाली है, ढक्कन हटा कर दिखा देता हूँ, हाँ इसे मेरे हाथों की सफाई समझिये या खुदा का करिश्मा कि आगे के खेल में एक जीती-जागती मूरत इसमें से बाहर निकलेगी।

पिटारी वाली बात से आपको पुरानी फिल्मों का ज़माना याद आयेगा। आपको याद होगा भगवान नामक एक्टर जब पिटारी सामने रख कर उसमें से ल की बाहर निकालने का खेल करने वाला होता तो आस-पास बैंचों पर बैठे हुए लोग उत्तेजित होकर उक ़ हो जाते थे। मैं जिस कस्बे में यह सिनेमा देखता उसमें सीमेंट की बैंचें होती थीं लम्बी-लम्बी जैसे मैड्रिड वगैरह में साँड लाल कप ़ पर झपटता है - वैसे ही लोग भगवान के इस पिटारी वाले खेल पर इसलिए झपटते कि उसमें से जो ल की निकलती वह बहुत घेर वाली सलवार पहने होती थी और अरेबियन संगीत पर जब वह लहराती तो दर्शकों को लगता - जन्नत यहीं है। ये जो दो-तीन तरह के शब्द हैं न जन्नत, जहन्नुम, मुहब्बत, अदा, फिदा वगैरह यह मैंने उन्हीं दिनों फिल्मों से सीखे हैं। और सच तो यह है कि हमारे गरीब देश को मुहब्बत करना सिखाया किसने है - पुरानी फिल्मों ने। तो दोस्तों ! सचमुच मुहब्बत वगैरह की किसी चीज़ से गुज़रना है तो आपको अपनी मानसिकता ४० से ५० के बीच की हिन्दुस्तानी फिल्मों की बनानी होगी।

आप में से कुछ जो लोग ८० वगैरह में रहना चाहते हैं, मैं दावे से कहता हूँ, मुँह की खायेंगे। इसीलिए मैंने इस बात पर विश्वास नहीं किया कि आधे दिन वाले दिन, छुट्टी से १० मिनट पहले वैसी ही भगवान की पिटारी से निकली हुई ख़ूब चौ े घेर के सलवार की एक ल की कमरे में प्रकट कैसे हुई। समझ नहीं आया कि चपरासी और क्लर्क की बाधाएँ उसने कैसे पार कीं। उसकी चाल और दबदबे को देख कर ये सारी जिज्ञासाएँ उठने से पहले ही दब गयीं। उसने जो कुछ बिना भूमिका के एक ही छोटे और बिलकुल स्पष्ट वाक्य में कहा उसे सुन कर दाँत जु गये और दोनों जब े सूखे काठ के टुक ों जैसे हो गये। बुखार में जैसे सब कुछ तपने लगता है, वैसी अनुभूति हुई। बुद्धि वगैरह तो उस समय जाने कहाँ चली गई, पता ही नहीं चला। कुछ भी तो जवाब देना था सो फटी-फटी आँखों से उसे ताकते हुए उसे कहा, 'थैंक्स. . . .' बीच में पसीना पोंछा और फिर एक बार कहा, 'थैंक्स. . . .' एक वाक्य और अँग्रेजी में बोला, जिसे कुर्सियों ने सुना. . . .वह तब तक चली गयी थी।

कुछ नीम-बेहोशी से जागे तो घ ी देखी। १ बजकर २० मिनट हो गये थे। एक बजने में दस मिनट थे तो वह ल की आयी थी। उसने यह भी कहा था कि दस मिनट काफी होते हैं। यह याद कर फिर इक बार पैरों में कँपकँपी आयी। पैरों में कँपकँपी पिछले तीन-चार वर्षों से मुझे गाहे-बगाहे हो जाती है। कई बार सोचता हूँ कि जूतों का बोझ पाँवों से ज्यादा है, इसलिए ऐसा होता होगा। सचमुच ही पाँव उठाये तो भारी लगे, क्लर्क के कमरे की दीवार का फट्टा हटाकर देखा - वह चला गया था। बाहर उठ कर आया। चपरासी फरियादसिंह और उसकी स्टूल दोनों ही नदारद थे, और तो और गलियारे की सारी ट्यूबें बंद और रेडियो स्टेशन के रिकार्डिंग रूम जैसा सन्नाटा वहाँ छाया हुआ था। आग बुझाने के लाल, जोकर की टोपीनुमा डिब्बे एक कतार में दूर तक लटके हुए थे। वे मेरी ज ता के मुकाबले में अधिक सजीव लग रहे थे। मैंने एक बार पूरे गलियारे में यहाँ से वहाँ तक एक राउण्ड लिया। सभी कमरों के दरवाज़ों पर ताले लटका दिये गये थे। एक बजकर तीस मिनट पर वहाँ ज कर देने वाली स्तब्धता छा गई थी। हमेशा बीट और फ फ ाहट करने वाले कबूतर भी उस समय वहाँ नहीं थे। उन्हें हाफ-डे इत्यादि का पता नहीं होगा और वे पूरे दिन के हिसाब से ही लौटते होंगे।

स्वयं को इतना अकेला जान कर फिर इक बार डर-सा लगा। सूनेपन से डर का क्या सम्बंध है, किसी ने इसका ठीक-ठीक विश्लेषण अभी तक नहीं किया। मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ? क्या यह सूनापन और बेआवाज़ माहौल इसी शहर और शताब्दी में है? मंत्र-कीलित-सा एक जगह ख ा हो गया। समझ नहीं आया कौन-सा कदम किस तरफ बढ़ाऊँ। बिल्कुल संज्ञा नहीं कि जिस भय से मैं मुक्त होना चाहता हूँ - वह मेरे भीतर है, किन्तु वह जिसके कारण है, वह अब यहाँ नहीं है, ऐसा विश्वास हुए बिना यहाँ से जाया भी नहीं जा रहा। आदमी पेशाबघर में घुसा - वहाँ वाश-बेसिन के सभी शीशे टूटे हुए। बचे आधों में कुछ भी देखना असम्भव - बस छाया जैसा कुछ उद्‌भासित हुआ। जाने क्या हुआ कि हिम्मत कर मैं बाहर निकला और स्त्री-पेशाबघर में घुस गया। वह इतने अधिक अँधेरे कोने में था कि दिल की 'हुक-हुक' आटा-चक्की की तरह बोलने लगी। वहाँ का वाश-बेसिन साफ था और शीशा भी चमकता हुआ किंतु वहाँ लिपस्टिक से कुछ लिखा हुआ था - थो ा और अंदर गया तो वहाँ स्त्रियों के आने-जाने की दुर्गन्धि और स्पष्ट हुई। दीवारों पर बाहर के शीशे से अधिक ही अफसाने लिखे हुए थे। अचानक भय हुआ कि कहीं कोई स्त्री आ गयी तो भय से हम दोनों ही चीख प ेंगे। सो बाहर निकला।

एक अच्छे-भले क्लास स्पेशल अफसर का गोलमटोल भरा हुआ चेहरा इस समय ऐसा हो रहा था जैसे फिल्म में रब की झुर्रियों वाला मुखौटा विलेन या विलेन का विक्टिम पहनता है। धीरे-धीरे कवायद करने की-सी प्रक्रिया में मैंने ब्रीफकेस को हिलाया और तिमंजले से उतर कर नीचे आया।

गेट-मैन गेट बंद करने के लिए तालियों का गुच्छा हाथ में लिए वहाँ ख ा था। मुझे घबराहट हुई। क्या इसने उस जादुई ल की को नहीं देखा होगा। मुझे देख कर उसने सलाम किया। मेरे गले की घरघराहट में से आखिर कंकर की तरह फँसा हुआ शब्द उछल कर बाहर आया, 'हिचकाक'।

'जनाब' इस बार वह घबराया। उसकी घबराहट से मेरा भय दुगुना हो गया। मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि उसने कहा, 'जनाब, पानी लाऊँ? हिचकी. . . .' 'न. . . .न. . . .' मैंने केवल हाथ हिलाया और उसकी तरफ बिना देखे दूर पर नज़र आ रहे एक छतदार कॉरीडोर की तरफ कदम बढ़ाया। 'हिचकाक' की किताब सुबह से पढ़ रहा था। उसने ड्राइविंग लाइसेंस इसलिए जन्म भर नहीं

बनवाया कि कभी ट्रैफिक पुलिस ने चैक कर लिया तो भय के मारे जवाब देते नहीं बनेगा। ऐसे व्यक्ति ने ऐसी डरावनी फिल्में बनायीं कि लोग देख कर चीख उठे, पागल तक हुए, हार्ट अटैक भी हुए। कमजोर दिलवालों को उसकी फिल्में न देखने की हिदायत विज्ञापनों में अवश्य दी जाती है।

कॉरीडोर आ गया। तो यह केवल भ्रम होगा। खाली टोकरी में छोकरी आ कहाँ से सकती है। आयी तो फिर गायब कहाँ हुई - तथा अन्य किसी ने देखी भी नहीं।

तीन-चार महिलाओं ने नमस्ते की। मुझे सौजन्यवश रुकना प ा। मुँह से कुछ अस्फुट-से शब्द पहली बार निकले, 'आप....मिस....' कि नज़र उनकी सलवारों पर अटक गयी। थो ा और झुककर मैंने उनमें से प्रमुख को सम्बोधन करना चाहा तो मुँह से निकला, 'मिस सलवार....'

'सलवार नहीं सर, तलवार। तलवार....उधर फूड एण्ड सप्लाई में....दस साल से....' मैं और भयभीत हो गया।

'हद है, आप मुझे नहीं पहचान रहे ! आप और मैं दस साल से इस बराम्डे में मिल रहे हैं।'

मैंने हँसने की कोशिश की....'हाँ....बराम्डे में....इसी....दस साल से' बोल कर फिर मेरी जीभ तालू से चिपक गयी और दाँत जु गये। ब्रीफकेस का हिलना बंद हो गया। मिस तलवार ने मैदान मार लिया था। बोली, 'सर, मेरी सहेलियों से मिलिये। यह नीता, साइकोलॉजी में लैक्चरर है युनिवर्सिटी में....बाकी इसकी....'

'अच्छा....आप....हिचकाक....' मैंने कोशिश करके दोनों जब ों को अलग-अलग किया।

उस साइकोलॉजी की लैक्चरर ने मेरा अधूरा आलाप सुन कर आँखों से चश्मा उतारा। काफी चोर-चमक थी उनमें। मेरी हालत उस कबूतर जैसी थी जो बिल्ली के झपट्टे से बाल-बाल बच गया था और उ ने के नाकाबिल होकर मुँडेर पर बैठा सभी को संदेह की नज़र से देख रहा हो। उसकी आँखों की चमक और बिल्ली की शिकारी आँखों की चमक में कोई अंतर नहीं था।

मैंने उनसे नज़र हटा कर अपने दफ्तर के तिमंजिले कंगूरों की तरफ देखा। 'जनाब ! छुट्टी हो गयी है, अब भी दफ्तर में वहाँ क्या छो आये हैं....चलिये हमारे साथ कुछ ले लीजिये....चाय... कॉफी....कुछ भी....'मिस तलवार बोली। 'कबूतर....' मैंने उस व्यक्ति की तरह जिसके सिर पर जादू का डंडा घुमा दिया गया हो, फिर ओठों से अस्फुट बुदबुदाहट की।

'कबूतर तो रहेंगे ही दफ्तर में, आप उनके पीछे मण्डे तक यहीं बैठे रहेंगे क्या - यह वीक-एण्ड की चाय हमारे साथ....आखिर हमारा भी कुछ हक है आप पर....'

मुझे समझ नहीं आया - जिस मिस तलवार को मैंने कभी पिछले दस सालों में लिफ्ट नहीं दी वह कैसे मुझे फँसे हुए कबूतर-सा पक कर कॉफी-हाउस लिये जा रही थी।

प्रतिरोध

डॉ. मीना पंड्या

मेरी बेचैनी पछ ाते धोंध में है,
ज़िन्दगी जैसे किसी खोज़ मे है।
तू जो बरसे तो भाप बन जाएगी,
ये तप्ता रेगिस्तान शांत बन जाएगा।
जानकारी है मुझे मेरी गति की,
मेरी पहचान तो साफ प्रतिरोध में है।
नहीं खुश हूँ, मैं कागज़ की नाव हूँ,
मेरा अस्तित्व तो, पानी के धोंध में है।

युग-प्रवर्त्तक आचार्य स्वामी रामानन्द

डा. वीरेन्द्र कुमार वसु

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मध्ययुगीन भारत का कई दृष्टिकोणों से अपना अलग विशिष्ट महत्व रहा है। साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी की निर्गुण काव्य-धारा की विशेष प्रवृत्तियाँ रही हैं। लौकिक राग से मुक्त होते हुए भी वह सहज काव्य-सृजन का सहजतम उदाहरण है। इसमें आत्मा का वह दिव्य-रस प्रवहमान है, जिसका एक ही कण पाकर त्रिविध-ताप संतप्त सहृदय मानव निहाल हो उठता है। भारतीय संस्कृति को अक्षुण्य रखने का श्रेय उसी मध्यकाल को है।

जिस काल में रामानन्दाचार्य की अवतारणा हुई, वस्तुतः वह काल सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोंण से संक्रमण का काल था। सामाजिक पृष्ठभूमि यह थी कि तब मुस्लिम आक्रमण के पूर्व का भारतीय समाज वर्णाश्रम विभेद पर आधारित था। समाज मुख्यतः उच्च और निम्न वर्गों में विभक्त था। इस वर्ण-भेद का विरोध जैन एवं बौद्ध धर्म के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। बुद्ध ने वेदों का प्रामान्य नहीं माना और न जातिवाद को ही स्वीकार किया। युद्ध-कर्म और हिंसा का भी विरोध बौद्ध धर्म ने किया। पशु-हिंसा तो सर्वथा त्याज्य एवं निन्दनीय समझी गयी। व्यापक उदार मानवीय दृष्टि के वे समर्थक रहे। स्पष्ट है कि बुद्ध के समय से ही भारतीय संस्कृति की लगभग दो धाराएँ बनने लगीं। एक धारा बाह्मण धर्म के समर्थकों की थी, जो वेद-स्मृतियों के विधानों को नहीं मानती थी और दूसरी धारा वह थी, जो बुद्ध के विचारों से निकल कर सिद्धों से होती हुई रामानन्द के परम शिष्य कबीर, नानक आदि में विकसित हुई। बुद्ध के समानांतर ही जैनादि मतावलम्बियों के द्वारा भी इस धारा का पोषण हुआ।

उस समय नीची दृष्टि से देखी जाने वाली लगभग बारह सौ उप-जातियाँ थीं, जिनका हिन्दू समाज में कोई आदर नहीं था। हिन्दुओं की पराजय के मूल में उनकी आत्यंतिक धार्मिकता भी थी। राजनीतिक स्थिति यह थी कि निरंकुश शासन-तंत्र में शासक का आचार ही प्रजा एवं कर्मचारियों और आश्रितों के आचार का मानदंड बना रहा। तब का भारतीय समाज इसी निरंकुश शासन-तंत्र की चक्की में पिसता रहा। जहाँ एक ओर सामंती वर्ग के ऐश्वर्य की प्रतीक दास-दासियाँ थीं, वहीं दूसरी ओर निम्नवर्गीय समाज मुख्य रूप से शिल्पी, श्रमिक, किसान जैसे वर्ग में ही सिमटा रहा। इस प्रकार निम्नवर्ग सामंतों के अत्याचारों को मूक होकर सह रहा था। मध्यकालीन भारत की स्थिति का यही सार है।

इन्हीं विश्रृंखल स्थितियों के बीच तांत्रिक बौद्ध, शैव तथा योग-साधनाओं के मिश्रण से कतिपय नवीन साधना-पद्धतियों के प्रवर्तन हुए। ऐसे ही समय में निर्गुणिया संतों का उदय हुआ। इन संतों ने समवेत रूप से अपनी अलौकिक प्रतिभा, अदम्य पौरुष और कठोर साधना के बल पर विभिन्न सम्प्रदायों के समन्वयात्मक दृष्टिकोंण अपनाये और अपनी वाणियों से बिखरी हुई जीवन-शक्तियों को एकत्रित किया एवं उनसे अनुप्राणित होकर वह दिव्य राम-रसायन तैयार किया, जिसके स्पर्श मात्र से ज -चेतन तन्मय हो जाते हैं। ऐसे ही संक्रमण-काल में अपना अलख जगाते हुए निर्गुण काव्य-धारा की स्त्रोतस्विनी फूट प ी। यहाँ स्मरण रखना होगा कि इस निर्गुण काव्य-धारा का उदय रूढ़िवादी अंधविश्वास-प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यही वह काल है, जिसमें आचार्य स्वामी रामानंद क्रांतिकारी युग-द्रष्टा के रूप में प्रोद्‌भासित हुए।

निर्गुणिये संत के सिरमौर के रूप में स्वामी रामानन्दाचार्य का अवतरण मध्यकाल की एक अविस्मरणीय घटना सिद्ध हुई। यह काल संवत् १३८५ के आसपास का है। उल्लेखनीय है कि रामानंद का स्वर्गारोहण सं. १५०५ में हुआ। यद्यपि ये दोनों काल मत-मतान्तर की विभिन्नता से मुक्त नहीं, तथापि काल तो स्पष्ट है ही। अपनी १२० वर्ष की लम्बी आयु रामानंद ने प्राप्त की थी। समवेत स्वर से सबों ने स्वीकार किया कि रामानंद में भक्ति-भावना कूट-कूटकर भरी थी। इस भक्ति में ज्ञान और कर्म की उपेक्षा की गई है, किन्तु यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। सच तो यह है कि रामानंद ज्ञान, भक्ति, योग और वैराग्य के समन्वयात्मक मिलन-बिन्दु के रूप में ख्यात रहे। उनकी इन्हीं समन्वय प्रवृत्तियों ने परवर्ती संतों को गहरे रूप से प्रभावित किया। सन्तों के 'राम' भी तो रामानन्द की ही देन हैं।

रामानंद ने एक सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था, जो श्री सम्प्रदाय, रामानंदी सम्प्रदाय एवं रामावत् सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। रामानंदी सम्प्रदाय के अनुयायी 'अवधूत' के रूप में जाने गये और उनमें से कुछ वैरागी रूप में। रामानंद के पट्ट शिष्यों की लम्बी परम्परा है। धन्ना, पीपा और सेन विशेष रूप से ज्ञात हैं। कबीर तो सर्वोपरि हैं ही।

धन्ना शाह जाति से जट थे। उनका जन्म-काल सं. १४६२ के आसापास निर्दिष्ट है (यथा - द सिक्ख रिलीजन - मेकलिफ-भाग ६, पृष्ठ १०६ में लिखित)। भक्तमाल में उसकी टीकाएँ तथा उनके संबंध में अनेक अलौकिक घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। 'गुरु ग्रंथ साहब' में उनके पद संकलित हैं।

पीपा भी कबीर के समकालीन हैं। वैराग्य ग्रहण करने के पूर्व ये गगरौन गढ़ के अधिपति थे। उन्हें उच्च कोटि के संत के रूप में मान्यता मिली। उनके पद भी 'गुरु ग्रंथ साहब' में सन्निविष्ट हैं (भक्तमाल, नाभादास)

रामानंद के पट्ट शिष्य के रूप में सेन भी प्रख्यात हैं। कबीर के पूर्व सेन रहे। जाति से वे नाई थे। बांधवगढ़ के राजा के सेवक थे वे। 'गुरु ग्रंथ साहब' में वे भी उद्धृत हैं। उनके पदों से ज्ञात होता है कि वे भी उच्च कोटि के संत थे।

इसी श्रृंखला में अनेकानेक और भी कई संत हुए, जो आचार्य रामानंद के अनुयायी के रूप में बहुत ख्यात हुए। कबीर-परम्परा का क्या कहना ! कबीर तो सवार्धिक महत्व के सिद्ध हुए ही। उनके प्रखर व्यक्तित्व के आकलन-हेतु ग्रंथों की कतार ख ी की जा सकती है। कबीर स्वयं में एक व्यक्ति विशेष नहीं, अपितु एक युग, एक दर्शन हैं, जो शाश्वत के मानक-स्वरूप हैं।

प्रस्तुत आकलन के क्रम में यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि रामानंद जैसे सिद्ध निर्गुणिये संत के सिद्धांत और दर्शन क्या हैं, जिनके कारण तत्कालीन विश्रृंखल समाज को नयी दिशा प्राप्त हुई। न केवल वाचन-प्रवचन में, वरन् लेखन में भी रामानंद ने कई रचनाएँ दीं। उन्होंने ढेर सारी संस्कृत रचनाएँ लिखीं। इन रचनाओं में श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर, रामार्चन पद्धति, आनंद-भाष्य, योग-चिन्तामणि, राम-रक्षा-स्तोत्र, सिद्धांत-पटल आदि प्रसिद्ध हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से उनमें कुछ संदिग्ध भी समझे गये हैं।

निर्गुण विचारधारा के कतिपय प्रमुख तत्व हैं, जो प्रकारान्तर से रामानंद जी के विचार-दर्शन में निहित हैं। भेद-भाव विहीनता, ब्रह्म की निर्गुणता, अनन्य प्रेम-भावना, सर्वात्मवाद और अद्वैत भावना, नाम-साधना, भक्ति-भाव, सेवक-सेव्य-भाव, रहस्य-भावना एवं सर्वोपरि समाजोत्थान-भावना इत्यादि। स्वामी रामानंद ने संत उसे कहा, जो सभी सांसारिक बाधाओं से संघर्ष करता हुआ विजयी होता है। संत वह नहीं, जो समाज से पलायन लेकर गुफाओं और कंदराओं में एकांत-वास करता है। संत विवेकी, सारग्रही एवं निष्काम भक्त होता है। वह संसार के आर्त्त एवं दुखीजनों में शांति, शील एवं आनंद का निर्लिप्ति भाव से वितरण एवं प्रसार करता है। इन्हीं पक्षों की ध्वनियाँ कबीर की वाणी में परिव्याप्त हैं -

निरवेरी निहकामता, साईं सेती नेह।
बिखया सौं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह।।

रामानंदाचार्य के दर्शन में 'संत' शब्द के अंतर्गत ही सम्पूर्ण सद्गुणों को समाहित करने की सफल चेष्टा की गयी है। संत विवेक, दया, क्षमा, ममता, विश्व-बंधुत्व, सहानुभूति, शील, सदाचरण एवं लोक-हित-भावना जैसे महान गुणों से युक्त एवं सर्व-विकारों से रहित होता है। रामानंद के विचारों में ऐसे ही उच्चादर्शों के भाव अंतर्भुक्त हैं। लोक-नायक के व्यक्तित्व की सच्ची परख ऐसे ही गुणों की समन्विति से होती है। समाज का सच्चा मार्ग-दर्शक होता है वह। अपनी वाणी व आचरण से वह समाज के सम्मुख मानदण्ड उपस्थित करता है। वह युग-दृष्टा और युग-चेता होता है, जैसा कि स्वयं रामानंदाचार्य रहे। निर्गुण ब्रह्म के उपासकों की यही सच्ची पहचान है। रामानंद के शिष्य कबीर के लिए ऐसी पृष्ठभूमि का धरातल पूर्व की भित्ति पर ही आधारित है। स्वामी रामानंद के आविर्भाव से बीज-वपन हो गया, जिसका पल्लवन-पुष्पन कालांतर में कबीर-श्रृंखला से विकसित होता गया।

भक्ति-भाव के आचार्यों का प्रतिपादन है कि ज्ञान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति संभव नहीं। अतः वे भक्ति को ही ब्रह्म-प्राप्ति का सबल साधन मानते हैं। रामानंदाचार्य का दर्शन है कि उत्तम भक्ति में ज्ञान मिश्रित रहता ही है। रामानंद ने भक्ति-भाव की प्रगाढ़ता को ही सर्वोपरि माना है, जिसमें पूर्ण

समर्पण का भाव सन्निहित रहता है और फलस्वरूप चित्त निर्मल एवं निर्लिप्त हो जाता है। सम्पूर्ण विश्व तब एक परिवार-तुल्य प्रतीत होने लगता है, जहाँ किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं टिक सकता। वे इसी मत के पक्षधर रहे। रामानंद ने ही कबीर को भक्ति की ऐसी दीक्षा प्रदान की। रामानंद से दीक्षित होने से पूर्व हठयोग की साधना में कबीर रमे थे। रामानंद के प्रभाव से ही कबीर की समस्त वाणियाँ प्रभावित हुईं -

कहै कबीर जोगी अरु संगम, ए सब झूठी आसा।
गुरु प्रसाद रहो चात्रिग ज्यूँ, निहने भगति निवासा।।

रामानंदी सम्प्रदाय में वैष्णव-सम्प्रदाय को पनपने का अवसर मिला। वैष्णव-सम्प्रदाय में भक्ति सर्वोपरि है और ज्ञान, योग, कर्म आदि गौण या उसके सहायक। राम नाम के बिना तो सब कुछ निरर्थक और निष्प्रयोजन है। रामानंद के व्यक्तित्व में युग की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ ही मानों वाणी प्राप्त कर रही थीं एक नयी संजीवनी-शक्ति के रूप में।

संतों की वाणी में गुरु की महत्ता भी बलवती हुई। रामानंद के स्वर में गुरुदेव का भाव आद्यन्त सन्निविष्ट रहा है। रामानंद का कथन रहा कि जीव के संशय का उच्छेद गुरु ही कर सकता है। गुरु के सान्निध्य का अर्थ है सांसारिकता के प्रति मोह का अंत। उन्होंने गुरु को ज्ञान-प्रदाता और ब्रह्म को सद्गुरु माना। गुरु ही सद्गुरु का प्रतिनिधि होता है और गुरु-प्रदत्त मार्ग पर चलने से सद्गुरु (ब्रह्म) की संप्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। तभी तो कबीर ने व्यक्त किया -

गुरु गोविन्द दोऊ ख`, काके लागूँ पाय।
बलिहारी उस गुरु की, जो गोविन्द दिया बताय।।

स्वामी रामानंद ने हठयोग पर भी अपनी मान्यता को सुस्पष्ट कर दिया। हठयोग में 'ह' और 'ठ' दो वर्ण हैं। इसमें 'ह' का अर्थ है सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र है। स्वामी रामानंद ने चन्द्र और सूर्य को स्थिर तत्व के रूप में निर्देशित किया है। इसी सहारे कबीर ने गंगा को उलटकर यमुना में मिलाने, सूर्य का चन्द्र में मिल कर समाहित हो जाने, शशिहर को सूर्य को ग्रस्त कर लेने, चन्द्र-सूर्य मिलन, चंद्र-सूर्य-एकत्व आदि का संकेत दिया है। (द्रष्टव्य - कबीर की साखियाँ)।

रामानंद ने पाँचों इन्द्रियों को उनके पाँच विषयों से अलग रखने के विधान को दर्शाया है। तीर्थाटिनों में भटकने से उत्तम है आत्मा में विराजमान प्रभु को ही अवलोकित किया जाये। नाथ-पंथियों का भी यही दर्शन था। रामानंद ने ध्यान पर भी बल दिया। सद्गुरु के साथ होली खेलते समय उन्होंने ध्यान व युक्ति की पिचकारी के प्रयोग-पक्ष को प्रतिपादित किया है।

रामानंदाचार्य की दृष्टि बहुआयामी रही है। संकीर्णता को उन्होंने एकांगी रूप में कभी नहीं स्वीकार किया। वैसे भी संतों की कर्म, योग, ज्ञान या भक्ति-साधना इत्यादि को बहुपक्षीय विश्लेषणात्मक दृष्टिकोंण से आँकना चाहिए। संत सांसारिक कर्म सहज भाव से करते हैं, यही उनका लक्षण है। कभी उन्होंने वर्ण-भेद जैसी संकीर्ण भावना को पनपने नहीं दिया। सर्वधर्म-समन्वय-साधना के साधक रूप में ही सभी संत समर्पित रहे।

पोथी के ज्ञान को मान्यता नहीं दी उन्होंने। असली ज्ञान तो गुरु द्वारा निर्देशित मार्गों के अनुकरण-अनुसरण में निहित है। निष्क्रिय संतों के रूप को रामानंद सदैव नकारते रहे। उनकी धारणा थी कि कर्म में लीन रहते हुए भी अपने सदाचरण से जन-हित की भावना से परिचालित उनके वचन और कर्म होने चाहिये। योग से अधिक महत्व भक्ति को रामानंद ने इसलिए दिया कि भक्ति तो पूर्ण समर्पण का नाम है, जो कल्याणार्थ है। तभी तो रामानंदाचार्य का व्यक्तित्व एक युग-प्रवर्त्तक के रूप में सिद्ध हुआ। धर्म और सम्प्रदाय चाहे जो भी हो, रामानंदाचार्य उसके फेर में कभी नहीं प`। यदि रामानंद न हुए होते तो कबीर जैसे क्रांतिकारी युग-दृष्टा कहाँ से आते ! बीज ही तो पौधे-पे के कारक होते हैं।

इस दृष्टि से रामानंद के व्यक्तित्व की महत्ता सार्वभौम रूप से आज भी प्रासंगिक प्रतीत होती है। आज की जो स्थितियाँ हैं, उनसे सम्पूर्ण विश्व आहत और आतंकित है। सर्वत्र अधम, ग्लानि, हताशा, निराशा, उत्पी न, नर-संहार और भ्रष्ट आचारों का साम्राज्य फैला हुआ है। जात-पात, धर्म-सम्प्रदाय, ऊँच-नीच एवं नीति-अनीति के वर्तमान परिवेश में रामानंद सरीखे व्यक्तित्व की अपेक्षा बनती है। काश, कोई महापुरुष पुनः रामानंद बनकर अवतीर्ण हो जाता तो संतप्त-संत्रस्त मानवता के लिए वरदान सिद्ध हो जाता। उस सिद्ध संत पुरुष आचार्य रामानन्द के प्रति हम सब का समवेत नमन।

इरादा वही जो अटल बन गया है

राम प्रसाद शर्मा 'महर्षि'

इरादा वही जो अटल बन गया है
जहाँ ईंट रक्खी, महल बन गया है

ख़्याल एक शाइ़र का आधा-अधूरा
मुकम्मल हुआ तो ग़ज़ल बन गया है

कहा दिल ने जो शे'र भी चोट खाकर
मिसाल इक बना, इक मसल बन गया है

पुकारा है हमने जिसे आज कह कर
वही वक्त कमबख़्त 'कल' बन गया है

वो अभ्यास क्या रंग लाया है नित का
कठिन काम कितना सरल बन गया है

रहा पंक में जो स्वयं को बचा कर
खिला और खिल कर कमल बन गया है

दिलों पर वही राज करता है 'महर्षि'
कि हर क़ौल जिसका अमल बन गया है

दहेज

सुरेश शर्मा

प ोसन ने नई-नवेली दुल्हन का घुँघट उठा कर देखा। फिर उसकी सास से बोली, 'बहनजी, बहू तो बहुत सुंदर है। सुना है कि पढ़ी-लिखी भी बहुत है। मगर दहेज में भी कुछ लाई है या नहीं?'

सास कुछ जवाब दे पाती, उससे पूर्व ही बहू ने चेहरे पर मुस्कान बिखेरते हुए कहा, 'गरीब पिता जी की हैसियत ज़्यादा तो नहीं थी चाचीजी, फिर भी यहाँ की सुविधा का ध्यान रखते हुए 'स्टोव' तो दिया ही है।' कहने के साथ ही चूल्हे की कम होती हुई आँच को सम्हालते वक्त धुँए से या दुःख से उसकी आँखें छलछला उठीं।

पत्थर

मरियम 'ग़ज़ाला'

अभी है ताजमहल में जवाँ जवाँ पत्थर
सुना रहे हैं मुहब्बत की दास्ताँ पत्थर

जबीं झुकाई है देखा जहाँ-जहाँ पत्थर
बना दिया है तुम्हीं ने ये आसमाँ पत्थर

अमन की दौर में जिनसे बनी हसीं मूरत
बने फ़साद में लेकिन वबाले जाँ पत्थर

सितमगरों के न सीने में झाँक कर देखो
कि दिल नहीं है वहाँ है फ़क़त निहाँ पत्थर

कभी न ख़त्म हुआ ये सिलसिला ठोकर का
सदा ही राह में पाये यहाँ वहाँ पत्थर

जमे हुए हैं कहीं बर्फ बन के चोटी पर
उबलते लावे में पाए धुँवा धुवाँ पत्थर

बने हैं गोल चमकते ये घिस के धारे में
नदी में देखे हैं हमने रवाँ रवाँ पत्थर

ज ा है ताज में कहते हैं कोहनूर जिसे
निकल के ज़ेरे ज़मी से कहाँ गया पत्थर

मकान, कब्र, स क, गुंबदों-मीनारों में
जहाँ जहाँ भी गये हम मिले वहाँ पत्थर

बराबरी हो ग़ज़ाला की उनसे फिर क्यों कर
गुहर वहाँ है मुकद्दर में है यहाँ पत्थर

अपनी अपनी सोच

डा. योगेन्द्रनाथ शुक्ल

पिछले एक माह से बिसेसू रोजगार से लगा हुआ था। उसे दोनों समय भर पेट भोजन मिलता था और रात को खुमारी की व्यवस्था भी हो जाया करती थी। इसके अलावा हाथ-खर्च अलग। ताँगे में बैठे-बैठे माइक पर बोलने का यह काम उसे बहुत अच्छा लगता था। आस-पास के गाँव वाले उसे पहचानने लगे थे और कुछ तो उसे नमस्कार भी करते थे। यही कारण था कि इन दिनों बिसेसू स्वयं को किसी धनवान से कम नहीं समझता था।

लेकिन कल से यह काम बंद हो जायेगा और उसकी सब सुविधाएँ समाप्त हो जायेंगी। यह सोच कर बिसेसू उदास हो गया था।

घर के ओटले में बैठकर उसने बोतल निकाली। वहाँ से गुज़रने वाले कुछ लोग जल्दी-जल्दी होने वाले चुनावों की परेशानी की बातें कर रहे थे, मगर बिसेसू आसमान की ओर हाथ उठा कर ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था, 'हे प्रभु, चुनाव जल्दी-जल्दी कराना, ताकि कुछ दिनों के लिए मैं फिर से अमीर बन सकूँ।'

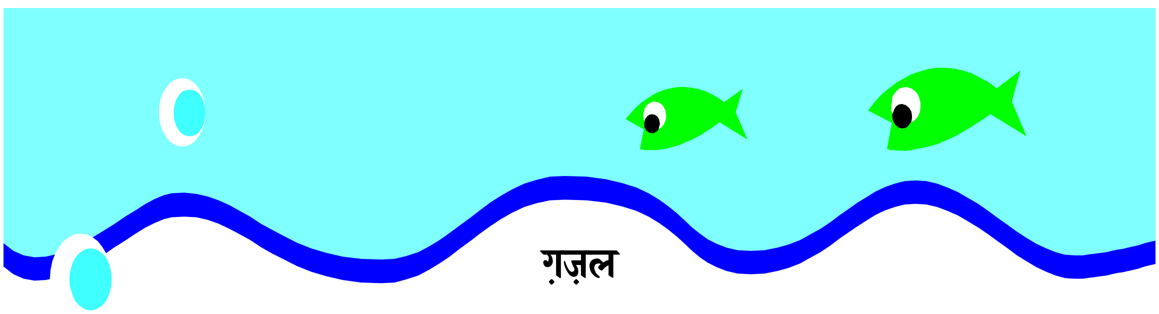

ग़ज़ल

महेन्द्र नाथ नरहरि

रोज बहती है नदी कल-कल कोई,
गूँजती कानों में है हल-चल कोई।

रात में वो खोलते हैं कश्तियाँ,
टूटती चुप्पी है यों पल-पल कोई।

सर्द रातों में स क पर काँपता,
चींख़ता है ज़ोर से पागल कोई।

धूप का जब काफ़िला आगे बढ़ा,
आसमाँ पर छा गया बादल कोई।

आदमी की इस हवस को क्या कहें,
खुद को काटते देखता जंगल कोई।

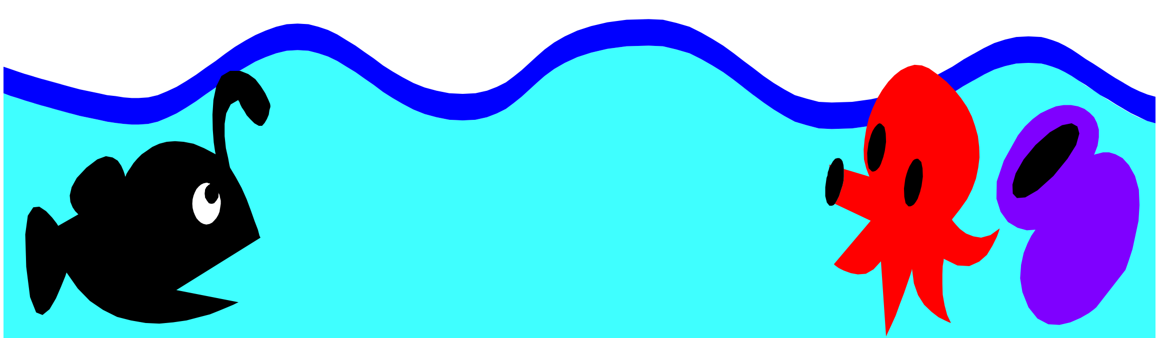

आसरा

भागवत प्रसाद मिश्र

'जय कृष्ण हरे, श्री कृष्ण हरे, दुखियों के दुःख दूर करे। जय जय कृष्ण हरे।

रामेश्वर ने अपनी तीनों पुत्रियों, पुत्र तथा पत्नी के साथ शाम की आरती समाप्त कर मन ही मन मस्तक झुका कर अंतिम नमस्कार किया। इसी समय उसकी आँख से एक बिन्दु जल बह कर गाल तक आ गया। उसकी पत्नी ने भी देखा। कुछ सहम-सी गयी। बोली, 'क्यों क्या हुआ?'

'कुछ नहीं,' कह कर रामेश्वर ने प्रसाद की तश्तरी उठाई और बच्चों और पत्नी को प्रसाद देकर अपने कमरे की ओर चला गया। यद्यपि एक क्षण के पश्चात् उसकी स्वाभाविक हँसी लौट आयी थी पर उसकी पत्नी से कुछ छिपा न रहा।

संध्या का विवाह हुये पूरे नौ वर्ष हो चुके थे। उस समय वह सोलह वर्ष की थी। पर इन नौ वर्षों में शायद पाँच वर्ष ही उसे पति के साथ रहने का अवसर मिला। पहले के चार वर्ष यों ही निकल गये। चारों वर्ष उसे अपने पिता के घर ही रहना प ा। इन चार वर्षों में उसने अपने प्रथम पुत्र महेन्द्र को भी अपने हाथ से खो दिया। उन दिनों उसे रामेश्वर के घर मान और स्नेह का अभाव-सा मिला। इस कारण पारस्परिक जीवन में वह स्नेह और रसात्मकता न रह गई थी जो भारतीय गृहस्थ का आदर्श होती है। यद्यपि ईश्वर की दया से उसके अब भी एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं, फिर भी तीसरे-चौथे दिन पहले की बातों को लेकर वह ताना मार देती थी और रामेश्वर व्यथित हो उठता। पर संध्या रामेश्वर को हृदय से चाहती भी तो थी। उसे व्यथित देख कर स्वयं विह्वल हो उठती। उसे मनाती और जीवन यथावत् चलने लगता।

रामेश्वर अपनी माँ का इकलौता पुत्र था। पिता चार वर्ष की अवस्था में ही उसे छो कर इस संसार से चले गये थे। माँ के ला -प्यार से पला हुआ रामेश्वर विवाह के पूर्व कष्ट की परिभाषा भी न जानता था। यद्यपि उसके पिता कोई ज़मीन-जायदाद न छो गये थे और उसकी माँ के पास दो बीमा पॉलसियों के रुपये तथा कुछ ज़ेवरात को छो कर आय का कोई अन्य साधन न था, परन्तु उसे कभी कोई कष्ट न मिला था, यह बात भी सत्य थी। विवाह के उपरांत उसकी माँ का अपनी मान-मर्यादा और प्रभुत्व की धाक जमी देखना स्वाभाविक ही था। किंतु एक वर्तमान शिक्षित परिवार में पली हुई संध्या भला यह कैसे सहन करती। उसने अवहेलना की और परिणाम संघर्ष। इस संघर्ष का परिणाम जो कुछ भी हुआ, सो हुआ, किंतु एक बात दिन की तरह सत्य थी। वह यह कि रामेश्वर के जीवन की महत्वाकांक्षायें समाप्त हो गयीं। परिस्थिति की विवशता ने उसे उच्च शिक्षा के होते हुये भी एक सरकारी स्कूल की चारदीवारी के अंदर अपना जीवन समाप्त करने के लिए बाध्य कर दिया।

कालांतर में यह प्रश्न एक साधारण प्रश्न बन कर ही न रहा। इसका विषम रूप आर्थिक कठिनाई के रूप में उसके सामने आया। इस ल ाई-झग े के मध्य भी भारतीय की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार उसके चार बच्चे और हुये, तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र और हर बार चार-पाँच सौ का खर्च। नित्य प्रति की मँहगाई अलग।

संध्या के माता-पिता उसकी सहायता को सदा प्रस्तुत रहते, किंतु रामेश्वर को यह स्वीकार न था। वह एक स्वाभिमानी व्यक्ति था। उसे उनसे एक पैसा लेना भी गवारा न था। साथ ही चार वर्ष पत्नी को मायके रख कर उसे जो पुरस्कार मिला था वह था सदैव की ग्लानि और लज्जा। उधर संध्या भी अपनी सास से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता लेना पसंद न करती थी। वह किसी प्रकार यह सहन करने को तैयार न थी कि उसे सास से दबना प े। अतएव बोझ एकाकी रामेश्वर को ही उठाना प ता था। शिक्षा विभाग में उन दिनों रिश्वतें न चलती थीं, वर्ना धर्म-भीरू होते हुये भी वह शायद लेने से न हिचकता। अतः तन्ख़्वाह के अलावा उसकी आय का अन्य कोई साधन न था। हाँ सुबह-शाम, यदि मिल गये तो ट्यूशन अवश्य करता था। इस प्रकार सुबह से लेकर शाम तक भटकने के बावजूद वह मुश्किल से दो सौ रुपये जुटा पाता था। उधर खर्च था जो किसी भी दशा में ढाई-तीन सौ से कम न था। एक के बाद एक संतान पैदा करने के कारण संध्या भी दुर्बल हो चली थी। इसलिए इसकी सहायता के लिए एक मिसरानी का होना आवश्यक था। काम इतना रहता कि चार

बच्चों के बीच कभी-कभी भोजन तक की नौबत न आती। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि रामेश्वर सदैव उद्विग्न-सा रहने लगा।

बच्चों को दूध देकर और सुला कर संध्या रामेश्वर के कमरे में गयी। रामेश्वर की उद्विग्नता से वह अनभिज्ञ न थी। पर वह क्या करती? परिस्थितियों ने उसे ऐसा बना दिया था। वह स्वयं कभी अपनी ज़बान पर दूध या घी तक न रखती थी। फिर भी दरिद्रता मानों मुँह फा े ख ी थी।

दरवाज़ा कुछ बंद था। उसने धीरे से खोला और झाँका। रामेश्वर मस्तक को हाथों से दबाये आँखें बंद किये लेटा था। लैम्प जल रहा था और पास ही स्टूल पर कॉपियों का एक बंडल, होल्डर और लाल रोशनाई रखी थी। वह धीरे-धीरे उसके पास आयी और व्यथित-सी होकर सर पर हाथ रखते हुये बोली, 'सो गये क्या?' रामेश्वर एकाएक आँख खोल कर बोला, 'नहीं तो, यों ही कॉपियाँ जाँचते-जाँचते थक गया तो लेट गया। आओ बैठो।'

संध्या सिरहाने बैठ गयी और दोनों हाथों से सिर दबाने लगी। रामेश्वर को ब ा अच्छा लगा। उसने फिर आँखें बंद कर लीं। एकाएक गर्म आँसुओं के दो बूँद उसके मस्तक पर प े। वह उठ कर बोला, 'अरे ! यह क्या? तुम रो रही हो।'

अब संध्या से न रहा गया। वह पति की गोद में सर रख कर और ज़ोर से रोने लगी। रामेश्वर उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ प्यार से बोला, 'छिः ! पगली रोती क्यों है? भई, सुनूँ भी तो क्या बात है?'

'बात पूछते हो और मुझसे। ज़रा आईने में अपना मुँह तो देखो। य तुम्हें क्या हो गया है? तुम सूखते क्यों जाते हो? सर के बाल आधे से अधिक सफेद हो चले। अभी तीस पार हुई नहीं और बुढ़ापे ने आ घेरा। तुमसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि नौकरी छो दो। इसमें जान भी जाती है और ख़र्च भी नहीं चलता। पर तुम तो जैसे सुनते ही नहीं। सोचते होगे - मेरा क्या? मेरी तो गुज़र ही जायेगी, मरेंगे बच्चे और उनकी माँ।' संध्या रोते-रोते एक साँस में सब कह गयी।

रामेश्वर ने धोती के अंचल से संध्या की आँखें पोंछते हुये कहा, 'तो आख़िर करूँ भी तो क्या? संध्या मैं जानता हूँ कि इस छोटी-सी आमदनी में तुम्हें और बच्चों को कोई आराम नहीं। यह देखो न, तुम्हारी चू याँ कितनी ढीली हो गयी हैं और आँखों के नीचे इतनी कालिमा....'

वह भावुक हो उठा। कहता ही गया - आज से आठ-नौ वर्ष पूर्व जब तुम इस घर में आयी थीं - चम्पा-सा रूप, कांतिमय घनी वरुणियों वाले ब े-ब े नेत्र, महीन सा ी से झलकने वाली धरा-स्पर्शिणी वेणी, और राग-रंजित सुडौल और सुगठित देह - उफ़ ! सब एक स्वप्न हो गया।'

रामेश्वर के मुख पर हाथ रखती हुई वह बोली, 'चलो रहने भी दो। हर समय की हँसी अच्छी नहीं। मुझे क्या हो गया। मैं अब भी अच्छी हूँ। तुम्हीं को दिन-रात चिंता खाये डालती है।'

रामेश्वर मुस्करा दिया। वह जानता था कि संध्या की बातों में कितना सत्य है। कुछ देर चुप रहने के बाद संध्या बोली - 'क्यों न एक छोटा-मोटा रोज़गार कर लो। फ़िलहाल मेर ज़ेवरों से काम लो, आगे ईश्वर स्वयं सहायता करेगा।

रामेश्वर हँस दिया। वह जानता था कि कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन। और फिर संध्या की शादी के ज़ेवर। वह तो शायद जीवन में बनवा न सकेगा। फिर भी संध्या को आश्वासन देने के लिए बोला, 'अच्छा देखूँगा। शायद तुम्हारी ही राय लाभदायक हो। जाओ अब सो रहो। १२बज रहे हैं। सुबह पाँच बजे फिर उठना है।' यह कह कर उसने रजाई से मुँह ढक लिया। संध्या लैम्प बुझा कर चली गई।

एक दिन रामेश्वर ने स्कूल से लौट कर कहा, 'सुन रही हो संध्या ! अब हमारे दिन फिरे। ईश्वर ने हमारी सुन ली।'

संध्या ने चाय देते हुये कहा, 'क्या ख़ुशख़बरी है, सुनूँ तो?'

रामेश्वर ने तार का लिफ़ाफ़ा हाथ में देते हुये कहा, 'दिल्ली में केन्द्रीय सरकार में जो हिंदी अनुवादकों की जगह निकली थी, उसमें मैं चुन लिया गया हूँ। ५०० से ८००तक तनख़्वाह है, मँहगाई अलग। आगे ईश्वर फिर सुनेगा। हाँ, मुझे कल यहाँ से जाना है। परसों चार्ज लेकर और कोई मकान ठीक-ठाक कर दो-चार दिन में लौट आऊँगा और फिर तुम सबको ले चलूँगा।'

इतना कह कर उसने सुरेन्द्र को गोद में उठा लिया और खिलाने लगा। संध्या प्रसन्नवदन और काम देखने लगी।

रामेश्वर ने हँसते हुये कहा, 'संध्या ! तुम सचमुच आज ब ी सुंदर लग रही हो। बोलो क्या लाऊँ देहली से?'

'चलो भी, तुम्हें तो कुछ भी लिहाज़ नही चार बच्चों के पिता बन गये पर ल कपन न गया।' इतना कह कर अंदर चली गयी।

xxxxxxxxxxx xxxxxxxxxxxx xxxxxxxxxxx xxxxxxxxxxx xxxxxxxxxx

संध्या चार दिन से ब ी चिंतित है। दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगा हो गया है और रामेश्वर का कोई पत्र भी नहीं आया। आज आठवाँ दिन है। नित्य आरती के समय वह पति की कल्याण-कामना के लिए भगवान से प्रार्थना करती किंतु चित्त न लगता था। अभी वह बच्चों को लेकर चाय पीने बैठी ही थी कि डाकिये ने तार लाकर दिया। संध्या ने काँपते हाथों से तार खोला -

१३-१०-४८

इरविन हॉस्पिटल, दिल्ली

'रामेश्वर प्रसाद साम्प्रदायिक दंगे में मस्तिष्क आघात से मारे गये।'

तार हाथ से छूट प ा। संध्या विस्फारित नेत्रों से देखती रह गई। एक विशाल हाथ रामेश्वर को उसकी आँखों से दूर खींचे लिये जा रहा था। बगल के मकान में रेडियो पर कोई गा रहा था -

'मसीहा बन के बीमारों को किन पर छो ़ जाते हो !'

दुखों में भी खुशियाँ मनाता रहा हूँ

आचार्य हरिसिंह त्यागी

दुखों से ही नाता, बढ़ाता रहा हूँ।
दुखों में भी खुशियाँ मनाता रहा हूँ।।

अभावों की दुनिया मेरे पास में है,
अभावों में जीवन, बिताता रहा हूँ।
ग़मों को ही मैंने, दिये हैं निमंत्रण,
विपद को गले से लगाता रहा हूँ।।

गरीबों की दुनिया में, मैं बस रहा हूँ।
उन्हीं की मुहब्बत में मैं फँस रहा हूँ।।
अमीरों की मुझको नहीं कुछ ज़रूरत,
गरीबों के मैं पास, जाता रहा हूँ।।

तिरस्कार मुझको मिले हैं हमेशा,
पुरस्कार मुझसे बिचलते रहे हैं।
ग़मों का सदा जाल बिछता ही देखा,
मुसीबत को अपना बनाता रहा हूँ।।

ये जीवन की नैया तो मझधार में है।
खिवैया न कोई भी पतवार पे है।।
'हरि' तेरे बल पर बही जा रही है,
कि साहिल से मैं, लौ लगाता रहा हूँ।।

चौबीस पहियों वाला मंदिर

डा. चतुर्भुज

राजामण्डी में हमारी बस अहले सुबह पहुँच गई। एक ब े से मंदिर में प ाव डाला। स क के इस पार मंदिर का प्रांगण था और उस पार सीढ़ियों वाली एक ब ी सुंदर नदी। इधर भोजन की व्यवस्था होने लगी और उधर नदी में स्नान। लगभग चार बजे अपराह्न में बस फिर चल प ी। पाँच-सात किलोमीटर जाने के बाद बस में कोई खराबी आ गई और उसके बनने में काफी देर लग गई। रात जा े की थी लेकिन ठंड नाममात्र की नहीं। ब ा सुहाना मौसम था। सुबह हम लोग विशाखापटनम् पहुँचे और वहाँ समुद्र में तैरते जहाज को देखा। छोटे-ब े कई जहाज बिखरे प े थे। जहाज बनाने के कारखाने की भी थो ी-बहुत जानकारी ली। पहा को बीच से काटकर सर्पाकार स क की रचाना की गई है जो समुद्रतट तक ले जाती है।

दोपहर होते-होते हम लोग वहाँ से चल प े। अनेक गाँवों और शहरों को लाँघते हुए, लाल मिट्टी वाली भूमि से होते हुए, दोपहर एक पेट्रोल पम्प पर पहुँचे जहाँ भोजन की व्यवस्था हुई। शाम होते-होते वहाँ से चल प े। रात भर अनजाने स्थानों से होकर हमारी बस उत्तर दिशा में बढ़ती रही। इस क्षेत्र में हिन्दी न बोली जाती है न समझी जाती है। अँग्रेजी से तो दूर का भी रिश्ता नहीं है। पानी पैसे के मोल से खरीदना प ा। भाषा को लेकर हम लोगों को चाय-नाश्ते में ब ी कठिनाई हुई। जहाँ भी बस रुकती भीख माँगने वाले ल के घेर लेते। कुछ सयाने लोगों को भी भीख माँगते देखा। लगा, इस क्षेत्र में गरीबी चरम सीमा पर है। दक्षिण भारत में स क के दोनों ओर दूर-दूर तक इमली और बबूल के पे नज़र आते हैं।

खूब त के हम भुवनेश्वर पहुँच गये थे जो उ ीसा की राजधानी है। एक ब े धर्मशाला में जगह मिली। वाराणसी की तरह भुवनेश्वर भी मंदिरों का शहर कहलाता है। यहाँ के मंदिरों की वास्तु और स्थापत्य कला देखने लायक है। ये मंदिर अपने भीतर ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्व को समाहित किये हुए हैं। भुवनेश्वर का प्रधान मंदिर लिंगराज मंदिर के नाम से विख्यात है। इसमें भगवान शिव या त्रिभुवनेश्वर की अनेक प्रतिमाएँ हैं। यह मंदिर लगभग पाँच एक ज़मीन में है और इसकी दीवार की ऊँचाई लगभग १६०मीटर है। उत्तर, दक्षिण और पूरब में द्वार बने हैं। पूर्वी द्वार पैंतीस फीट चौ ा है जिसके दोनों तरफ दो सिंह की मूर्तियाँ हैं। लिंगराज मंदिर के अलावा परिसर में कोई सत्तर छोटे-ब े मंदिर हैं। मुख्य मंदिर सतह से पैंतालीस मीटर ऊँचा है। उत्तर में भगवती पार्वती, पश्चिम में कार्तिकेय और दक्षिण में गणेश की मूर्तियाँ हैं। ऐसा लगता है कि लिंगराज मंदिर एक विशाल प्रस्तरखंड को काटकर बनाया गया है। इस मंदिर को देखने से अचानक दक्षिण भारत के मंदिरों की याद आ जाती है।

कहा जाता है कि इसके निर्माण का प्रारंभ 'ययाति केसरी' नाम के राजा ने किया और उसके पोते ने ६६६ई. में इसे पूरा किया। लिंगराज मंदिर सहित परिसर के अन्य मंदिरों का निर्माण कार्य ५००वर्षों तक चलता रहा। चैत महीने में भगवान लिंगराज की रथयात्रा ब े धूमधाम से निकलती है। जगन्नाथ मंदिर की तरह यहाँ भी भात का महाप्रसाद चढ़ाया जाता है। लिंगराज का मंदिर उत्कल स्थापत्य का उत्तम उदाहरण है जिसकी तुलना पुरी के जगन्नाथ मंदिर और कोणार्क के सूर्य मंदिर से की जा सकती है।

दोपहर को हम लोग कोणार्क का सूर्य मंदिर देखने गए। यह मंदिर अपनी भग्नावस्था में हैं। कुछ अंशों को छो कर शेष अंश नष्ट हो रहे हैं। काले पत्थरों से बना कोणार्क का यह भव्य मंदिर समुद्र-यात्रियों द्वारा किसी युग में 'काला पगोडा' के नाम से प्रसिद्ध था जो उन्हें दिशा का ज्ञान कराता था।

कोणार्क, पुरी से पैंतीस कि.मी. उत्तर-पूरब दिशा में समुद्र के किनारे अवस्थित है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किसी ज़माने में समुद्र, कोणार्क के सूर्य मंदिर से सटा था, लेकिन इन दिनों समुद्र ३कि.मी. दक्षिण-पूर्व की ओर खिसक गया है। कोणार्क को सूर्यक्षेत्र भी कहा गया है। अर्क का अर्थ होता है सूर्य। पास ही चन्द्रभागा नाम की सूखी नदी है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस

सूर्य मंदिर के आसपास ब्राह्मणों की बस्तियाँ थीं और चन्द्रभागा एक ब ी नदी थी। प्राचीन कलिंग राज में समुद्र-तट के पास होने और धार्मिक महत्व के कारण इसका निर्माण किया गया होगा।

एक कथा के अनुसार कृष्ण ने अपने सुदर्शन पुत्र शाम्ब को कुष्ठ रोग होने का श्राप दिया था। नारद के सुझाव पर शाम्ब ने यहीं चंद्रभागा नदी के तट पर सूर्योपासना की और उस भयंकर व्याधि से त्राण पाया। चंद्रभागा नदी में स्नान करते समय शाम्ब को सूर्य की एक प्रतिमा मिली जिसे उसने एक मंदिर में रख दिया। तब से उस स्थान की प्रसिद्धि सूर्य-पूजा के लिए हुई। वर्तमान मंदिर का निर्माण कलिंग के राजा नरसिंह देव ने १५२८ई. में कमल के एक विशाल तालाब में कराया था।

विशु नामक एक शिल्पी की देख-रेख में बारह हज़ार कारीगरों ने इसका निर्माण सोलह वर्षों में पूरा किया। उस युग मे इस मंदिर के निर्माण में लगभग दो-सौ करो रुपये व्यय हुए। शिखर का कलश-स्थापन का कार्य उन कारीगरों से नहीं हो पाया। विशु के बारह वर्षीय पुत्र धर्मपाद ने इस काम को पूरा किया और राजा के कोप से अपने पिता तथा अन्य कारीगरों की रक्षा के लिए चंद्रभागा नदी में डूब कर आत्महत्या कर ली।

इस सूर्य मंदिर की निर्माण कला अद्भुत है। दूर से देखने पर लगता है जैसे पूरा मंदिर चौबीस पहियों के रथ पर रखा हो। आगे सात घो े खींच रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से ये चौबीस पहिये साल के चौबीस पखवारे या राशियाँ हैं तथा सात घो े सप्ताह के सात दिनों के प्रतीक हैं। रथ के पहिये नौ फीट से कम ऊँचे नहीं हैं। पट्टियों की खूँटियों में देवी-देवताओं की छोटी-छोटी प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। सूर्य जीव-जगत मे प्राण के संचारकर्ता हैं। मंदिर का प्रमुख भाग एक तरह से क्षत-विक्षत हो गया है। यह भी कहा जाता है कि काला पहा ने जब १५६८ई. में उ ीसा पर चढ़ाई की तो उसने भी इसे नष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया, लेकिन पच्चीस-तीस फीट मोटी दीवार को तो ना उसके लिए संभव नहीं हो सका। भूकम्प, विद्युतकोप, आँधियाँ और सबसे बढ़कर देख-रेख के अभाव के कारण मंदिर भग्नावस्था को प्राप्त हो रहा है। समुद्र की ओर से आने वाली नमक और रेतयुक्त हवाओं ने भी भारतीय स्थापत्य के इस अद्भुत नमूने को नष्ट करने में योगदान दिया है।

मुख्य मंदिर करीब सत्तर मीटर ऊँचा है। इसका परिसर लगभग ग्यारह एक में फैला है। अन्य कई छोटे मंदिर भी इस परिसर में हैं। शेष बाहर है। इस मंदिर का निर्माण ऐसे कोण पर किया गया है, तथा प्रतिमा इस ढंग से स्थापित की गई है कि सूर्य की पहली किरण हर तरफ से होकर प्रतिमा के मस्तक पर सीधी प ती है। दीवारों पर खुदी हुई मूर्तियाँ शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। मंदिर का कलेवर कामशास्त्रीय मूर्तियों से भरा है। संभवतः ऐसा दुष्टात्माओं से मंदिर की रक्षा करने के लिए शिल्पियों ने किया होगा।

मूर्तियों में वाद्ययंत्र के साथ नृत्यमंडली, साधनारत ऋषिगण, हाथी, ऊँट, सर्प आदि भी हैं। लगभग २५०० टन के पत्थर का एक नवग्रह है जिसमें ग्रहों की मूर्तियाँ बनी है। कहा जाता है कि ब्रिटिश सरकार ने इस प्रस्तर-खंड को कोलकाता ले जाने की बहुत कोशिश की, लेकिन ऐसा संभव न हो सका। नवग्रह की मूर्तियाँ भी ब ी सुंदर हैं। ये नवग्रह हैं - सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। इन नवग्रहों की बराबर पूजा की जाती है। नृत्यमंदिर भी देखने योग्य हैं। लोग कहते हैं कि मंदिर के नष्टप्राय होने के बाद सूर्य की प्रमुख प्रतिमा को सन् १६२८ई. में पुरी के जगन्नाथ मंदिर में ले जाकर रखा गया। बंगाल के कुछ अँग्रेज गवर्नरों ने इस मंदिर की सुरक्षा के लिए कुछ कार्य किये। लेकिन वह पर्याप्त नहीं था। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस ऐतिहासिक स्मारक की सुरक्षा के लिए शीघ्र प्रभावशाली कदम उठाये अन्यथा इसके नष्ट होने में देर नहीं लगेगी। मंदिर के चारों ओर घने जंगल लगाकर इसे समुद्र की रेतीली-नमकीन हवा से बचाया जा सकता है। पे ों की छाया में पर्यटक को भी विश्राम मिलेगा।

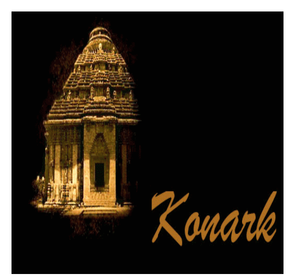

मगध के कर्मठ बौद्ध भिक्षु : जगदीश काश्यप

अशोक प्रियदर्शी

जिस तरह शिक्षा-केन्द्र शांति निकेतन की स्थापना के लिए गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर का स्मरण किया जाता है, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में पंडित मदन मोहन मालवीय पूज्य माने जाते हैं, उसी तरह बौद्ध शिक्षा-केन्द्र नव नालंदा महाविहार की स्थापना के लिए भिक्षु जगदीश कश्यप स्मरण किये जाते रहेंगे।

२ मई १९०८ को भिक्षु जगदीश काश्यप का जन्म राँची में हुआ था। गया जिले के रौनियाँ ग्राम में इनका पैतृक आवास था। इनके बचपन का नाम जगदीश नारायण था। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद ये भिक्षु हो गये और 'नारायण' की जगह उन्होंने अपना 'काश्यप' गोत्र जो लिया।

जापान के धर्मगुरु फूजी गुरु जी ने बौद्धग्रन्थ - 'सद्धर्म पुण्डरीक' का उल्लेख करते हुए कहा था - 'भगवान बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि बौद्ध धर्म के नष्ट होने पर, मगध का एक भिक्षु इसे पुनर्जीवित करेगा। भिक्षु जगदीश काश्यप सम्भवतः मगध के वही भिक्षु रहे हों, जिन्होंने भारत से लुप्तप्राय पालि त्रिपिटक को पुनः अपने देश में नया जीवन दिया।

बचपन से ही काश्यप जी स्वप्नदृष्टा रहे। शिक्षा से इनका अटूट लगाव था। पटना विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद इन्होंने बी.एच.यू. से दर्शनशास्त्र और संस्कृत में स्नातकोत्तर की शिक्षा पाई। फिर वे आर्य समाज को मानने लगे। देवघर स्थित संस्कृत विद्यापीठ गुरुकुल के प्रिंसिपल भी हुए।

जीवनधारा में परिवर्तन : पढ़ने की उत्कंठा में ही इस गुरुकुल में काश्यप जी की नज़र बौद्ध धर्म की एक पुस्तक 'धम्मपद' पर प ी। इस पुस्तक के सुत्तों को पढ़ कर ये प्रभावित हुए। 'मन ही व्यक्ति के अच्छे-बुरे कर्मों का नियामक होता है।' - सुत्त ने तो काश्यप जी के जीवन की धारा ही बदल दी। उन्होंने बौद्ध दर्शन पर अनुसंधान करने का निश्चय किया। बौद्ध दर्शन पर अनुसंधान करने के लिए आवश्यक था सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक का अध्ययन करना। भारत में पालि त्रिपिटक का नामोंनिशान मिट गया था। सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक के अध्ययन का एकमात्र केन्द्र श्रीलंका में स्थित विद्यालंकार महाविहार में ही था। राहुल सांकृत्यायन ने काश्यप जी के मनोभावों को जान लिया था। उन्होंने विद्यालंकार महाविहाराधिपति महा स्थिविर धर्मनिंद के नाम एक पत्र दिया और काश्यप जी को श्रीलंका जाने की सलाह दी। पत्र में राहुल जी ने काश्यप जी को अपना धर्मबन्धु बताया था और इन्हें दीक्षित करने का अनुरोध किया था।

श्रीलंका में रह कर काश्यप जी ने 'त्रिपिटकाचार्य' किया। बौद्ध धर्म पर संस्कृत भाषा पर एक पुस्तक की रचना की। यहाँ उनके व्याख्यानों की काफी प्रशंसा हुई। दान में प्राप्त रुपयों से काश्यप जी ने एक कुटी का निर्माण कराया और उसे बौद्ध भिक्षुकों के लिए दान मे दिया।

जब राहुल जी जापान जाने लगे तब उन्होंने अपने साथ काश्यप जी को भी रखा। किसी कारणवश काश्यप जी को पेनांग में ही रुकना प ा। यहाँ रह कर उन्होंने 'दीघनिकाय' और 'मिलिन्दपञहो' नामक बौद्ध ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। एक छोटी बच्ची से चीनी भाषा का ज्ञान पाया। बौद्ध धर्म पर अँग्रेजी में एक पुस्तक की रचना कर पाठकों के बीच वितरित किया। यहाँ काश्यप जी के अनेक व्याख्यान हुए। इनकी पुस्तक और इनके व्याख्यान से यहाँ के लोग इतने प्रभावित हुए कि पेनांग, सिंगापुर, मलेशिया के साथ समुद्रतटवर्ती कुछ चीनी उपनिवेषों में भी काश्यप जी चर्चा के विषय बने रहे। भिक्षुओं के आवास के लिए काश्यप जी ने पेनांग में भी 'बुद्धकुटी' का निर्माण कराया। फिर उन्होंने श्रीलंका की यात्रा की।

भिक्षुक जगदीश काश्यप का सम्पूर्ण जीवन एक शिक्षण संस्थान बना रहा। भारतवर्ष में बौद्ध धर्म को पुनः स्थापित करने के लिए उसी सारनाथ को अपना पहला कार्यक्षेत्र चुना जहाँ बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध ने अपने पाँच बिछ े भिक्षुओं को प्रथम धर्म उपदेश दिया था। काश्यप जी ने यहाँ एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की। बौद्ध साहित्य 'अभिधम्म दर्शन' के अध्ययन के लिए वे बर्मा, म्यान्मार गये। बर्मा से प्राप्त दान की राशि और सेठ युगल किशोर बि ला की आर्थिक

सहायता से काश्यप जी ने सारनाथ के शिक्षण संस्थान का काफी विकास किया। यहाँ बौद्ध धर्म में आते नये भिक्षुओं 'श्रामणेरों' को प्रशिक्षित किया। बि ला द्वारा काश्यप जी के लिए निर्मित सारनाथ का विशाल भवन, बाद में उन्होंने संस्कृत-तिब्बती भाषा के अध्ययन के लिए तिब्बतियों को दान में दे दिया।

बौद्ध विद्वान के रूप में काश्यप जी का नाम अब तक लगभग सभी बौद्ध देशों में फैल चुका था। काश्यप जी के प्रयास से इन्हीं की देख-रेख में पंडित मदन मोहन मालवीय ने बी.एच.यू.में पालि भाषा की पढ़ाई शुरू की। काश्यप जी के रहने के लिए बि ला ने बी.एच.यू. परिसर में ही 'बुद्धकुटी' नाम से एक भवन का निर्माण कराया।

नालंदा का उद्धार : शिक्षा की भूमि प्राचीन नालंदा को विश्व के मानचित्र पर एक नई तस्वीर बनाने का सपना देखा था काश्यप जी ने। पालि भाषा की पढ़ाई के लिए उन्होंने जन जागरण अभियान की शुरुआत की। बुद्ध के प्रिय शिष्य और नालंदावासी सारिपुत्त और मौद्गल्यायन के अस्थि अवशेष लेकर उन्होंने राजगृह का भ्रमण किया। बिहार शरीफ स्थित नालंदा कॉलेज में पालि भाषा की पढ़ाई आरम्भ कराई। अपने व्यक्तित्व से अनेक विद्यार्थियों का मन जीता और अपने खर्च से उनका नामांकन कराया। स्वयं उनके प्राध्यापक हुए।

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, काश्यप जी को पूरा सम्मान देते थे। जब वे बर्मा, म्यान्मार जाने लगे तब काश्यप जी को भी साथ लेते गये। बर्मा-वासियों को काश्यप जी ने बज्रासन स्थित बोधिवृक्ष की शाखा भेंट की। बर्मावासी के सम्मुख सम्राट अशोक के पुत्र भिक्षु महेन्द्र की छवि घूम गई। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने उद्‌बोधन में घोषणा की कि प्रचीन नालंदा की भूमि को मैं पुनर्जीवित करना चाहता हूँ। एक बार फिर से वहाँ शिक्षा का केन्द्र बनाना चाहता हूँ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की इस घोषणा से काश्यप जी को नया बल मिला, एक नई स्फूर्ति मिली। नालंदा को पुनःस्थापित करने में वे पूरी तरह जुट गये।

प्रचीन नालंदा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष का क्षेत्र इस्लामपुर स्टेट में प ता था। वहाँ के मुसलमान जमींदार ज़हूर साहब की ड्योढ़ी पर पहुँच गये काषायवस्त्रधारी भिक्षु जगदीश काश्यप। काश्यप जी की योजनाओं को सुन ज़हूर साहब बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने तत्क्षण ग्यारह एक भूमि का हुक्मनामा काश्यप जी को प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के पार्श्व में ही प्रदान किया।

अनेक भारतीय विद्वानों के साथ श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, थाइलैण्ड, लाओस, कम्बोडिया, नेपाल आदि देशों के बौद्ध भिक्षुकों के बीच देश-रत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने २० नवम्बर १९५१ को नव नालंदा महाविहार का शिलान्यास किया। कई बौद्ध देशों की सरकार ने अपनी-अपनी लिपियों में संग्रहीत 'त्रिपिटक' के ग्रंथ और तथागत की प्रतिमा, भिक्षु जगदीश काश्यप को भेंट कीं।

काश्यप जी का मन सदैव उदार था। धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता इनके व्यक्तित्व में लेशमात्र भी नहीं थी। जिस तरह गुलदस्ते में रंग-बिरंगे फूलों की आवश्यकता होती है उसी तरह नालंदा की पवित्र भूमि पर उन्होंने संस्कृत और दर्शन शास्त्र के विद्वान डॉ. सत्कारी मुखर्जी, जैन धर्म के विद्वान डॉ.नथमल टाबिया, डॉ. गुलाबचंद चौधरी, इतिहास और पुरातत्व के विद्वान डॉ. सी.एस. उपासक, श्रीलंका के विद्वान भिक्षु डॉ. यू.धर्मरत्न, बर्मी भिक्षु उजागराविभेन आदि पुष्पों को एकत्र किया। सभी विद्वानों को दायित्व सौंपा। फिर लग गये नालंदा को आकर्षक बनाने में।

इतिहास साक्षी है कि हर्षवर्द्धन के शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग नालंदा आया था। बारह वर्षों तक यहाँ विद्यार्थी रहने के बाद आचार्य हुआ था। भिक्षु जगदीश काश्यप उस चीनी यात्री की स्मृति को नालंदा से एक बार फिर जो ना चाहते थे। १९५५ में काश्यप जी चीन गये। चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन लाई से भेंट कर ह्वेनसांग का स्मरण दिलाया। उन्होंने उनसे ह्वेनसांग के अस्थि-अवशेष नालंदा भेजने के लिए अनुरोध किया। चीन में ही ह्वेनसांग मेमोरियल के निर्माण की योजना भी बन गई।

१९५७ के जनवरी माह में चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन लाई के प्रतिनिधि के रूप में तिब्बत के धर्मगुरु दलाई लामा का नालंदा में आगमन हुआ। धर्मगुरु दलाई लामा ने प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के हाथों में ह्वेनसांग के अस्थि-अवशेष प्रदान किये। साथ ही ५ लाख ७४ हजार ४१३ रुपये का एक चेक भी ह्वेनसांग मेमोरियल के निर्माण के लिए प्रदान किया। चीन और भारत सरकार

के आर्थिक सहयोग से ६४ एक जमीन के परिसर में नालंदा के पंसोखर (पद्मपुष्कर) सरोवर के तट पर ह्वेनसांग मेमोरियल आज पर्यटकों के दर्शन के लिए ख ा है।

नालंदा में रह कर काश्यप जी ने पालि त्रिपिटक का ४१ खण्डों में देवनागरी संस्करण प्रकाशित किया। पालि महाव्याकरण, बुद्धिज़्म फॉर ऐवरीबॉडी, दीघनिकाय, मिलिन्द प्रश्न (मिलिन्दपञहो) आदि काश्यप जी द्वारा लिखित अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं जो भारत में बौद्ध धर्म और बुद्धवाणी की झलक बिखेरने के लिए पर्याप्त हैं।

राजगृह का जापानी बौद्ध मंदिर। यह संयोग ही कहा जायेगा कि जिस मंदिर में काश्यप जी ने नालंदा को सजाने-सँवारने की योजना बनाई थी, जीवन के अंतिम दिनों में वे उसी मंदिर में विश्राम कर रहे थे। अनेक शिक्षण संस्थाओं और लोगों के व्यक्तित्व को सजाते-सँवारते काश्यप जी के अ सठ वसंत व्यतीत हो चुके थे। सूर्योदय के बाद सूर्यास्त, प्रकृति का नियम है। २८ जनवरी १९७६ की शाम सूर्यास्त हो रहा था। काश्यप जी के जीवन के सूर्यास्त की यही घ ी निश्चित थी। सूर्य मरता नहीं, अस्त होता है। पुनः नई रोशनी लिए दूसरे दिन प्रकाश बिखेरता है। भिक्षु जगदीश काश्यपरूपी सूर्य भी मरे नहीं, उनका अस्त हुआ है। महापरिनिर्वाण से पूर्व भगवान बुद्ध ने कहा था, 'प्रमादरहित होकर कार्य करते रहना चाहिये।' काश्यप जी आजीवन इसी वाणी पर अग्रसर रहे। अमर बौद्ध भिक्षु जगदीश काश्यप आपको कोटिशः नमन् है।

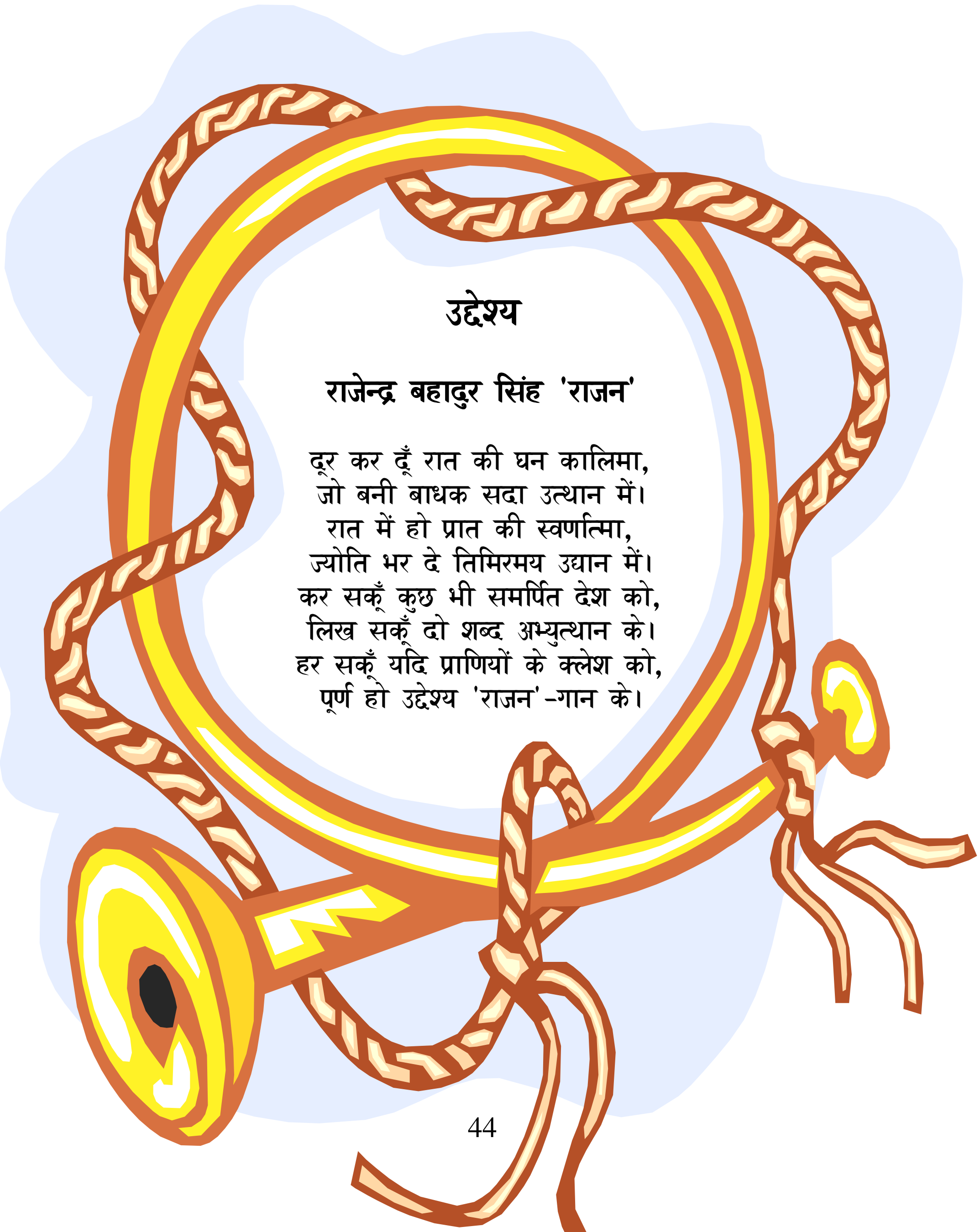

उद्देश्य

राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन'

दूर कर दूँ रात की घन कालिमा,
जो बनी बाधक सदा उत्थान में।
रात में हो प्रात की स्वर्णात्मा,
ज्योति भर दे तिमिरमय उद्यान में।
कर सकूँ कुछ भी समर्पित देश को,
लिख सकूँ दो शब्द अभ्युत्थान के।
हर सकूँ यदि प्राणियों के क्लेश को,
पूर्ण हो उद्देश्य 'राजन'-गान के।

सतरंगिया भोर

विजय सिंह नाहटा

हौले-हौले उतरी नभ से
सतरंगिया भोर
किरणों की झिलमिल से पुलकित
मन-उपवन की कोर।

तो अलसता किरणें आईं
हर ड्योढ़ी दरबार
घर आँगन में लगी किलकनें
जीवन की जयकार
दिशा-दिशा, पल्लव-पल्लव में
उत्सव का-सा शोर।

भावों की मलयानिल बुनती
ताल, गीत, नव-छन्द
मन का जैसे हुआ नेह से
चुपके-से अनुबन्ध
पी ा पूर्ण विराम हो गई
दुःख का ठाँव न ठोर।

चुप्पी की अमराई संग
ख़ामोशी कोकिल बोले
खुशियों के नवगीत बाँटती
कलियाँ आँखें खोले
चंचल चितवन चुरा ले गया
स्वर्णिम सागर-छोर।

धूप उतरती किरण सजे
रथ से चंचल कुछ हौले
खुलते बंद कपाट समय के
झाँके वातायन से
बंधन श्वास और दूरी में
पल छिन चारों ओर।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित